

प्रकाशक
साहित्य प्रवागान
स्टेशन रोड, जोधपुर

प्रथम संस्करण सितम्बर १९७३

मूल्य बारह रुपये
आवरण डॉ. गीति स्वरूप रायत

मुद्रक
रामायन प्रेस, बोरदा

शब्द और कला	६
वचन बद्ध	१६
तक भावुकता	२०
आज का आदमी	२१
गीत का औचित्य	२२
अभिव्यक्ति की खोज	२३
क्यों चुप है मेरे गीत	२५
अनगाये गीत	२८
तलब	२९
गीत सुनाता हूँ	३०
साधक गीत	३१
प्रवाह से दूर	३२
अपथा	३४
गीत खो गये	३५
दायरे	३६
विडम्बना	३७
अपराधी	३८
शब्द और मैं	३९
मेरे छंद	४०
स्फुरण	४१
सामजस्य	४२
गीत की नियति	४३
अनछुए सूत्र	४५
सिद्धि	४७
समथ गीत	४८
गीत या तो सनता हूँ	४९

प्राणि	५०
कि मुमारी लिखा है एक गीत	५१
गीत पुराने गा साना हू	५६
सब भविहीन	५७
मेरा प्यार	५८
प्रश्न - उत्तर	५९
सब बी बात	६०
प्रवासी मन	६१
विद्योहू ने दाप	६२
समर्पित	६३
निराश भा	६४
साम्त्वना	६६
घटित	६७
मुम्हारा प्यार	६८
सैटे सैटिया	६९
भलगाव	७०
परीक्षा	७१
विलय	७२
विज्ञान	७३
तुम नहीं प्राये	७४
स्मिनि बाप	७५
मेरा घर	७६
भरती बा बाद	७७
भूँके बिसरे गीत	७८
विश्वास का सबल	७९
जन्म दिन पर	८०
अस्वीकारी से	८२
आत्म बोध	८३
धिराट का बोध	८४
मैं रिक्त हू	८५
यथास्थिति वाला से	८६

नियोजित	८८
मैं—कटा हुआ पेड़	९०
गतव्य	९१
अनचाहा श्रम	९२
आत्म स्वीकृति	९३
अनुत्तरित प्रश्न	९४
अनघड़े चरण	९५
रक्त और उसूल	९६
निरयक	१०१
निस्सीम	१०३
परामव	१०४
तटस्थ	१०५
अमूल्य	१०७
अबेला	१०८
बीता क्षण	१०९
उलमन	११०
क्षमता	१११
बैविष्ण	११२
अहसास	११३
दिग्भात	११४
सशय	११५
सदयहीन	११६
सुन्दरता	११७
कथ्य और तथ्य	११८
बदलना सहन नहीं	११९
असफल विद्रोह	१२०
वार्ते	१२१
अप्रयोजनीय	१२२
मतभेद	१२३
भाकृतिया	१२४
कुछ स्थितिया	१२५

मन्त्ररूरी	१०७
वरणा	१०८
वषा घोर में	१०९
तद्वा	१११
मात्रिप्य	११२
पाद	११३
मभिपान	११४
मुक्ति का स्वर्णिम सहरा	११६
मनुष्य की परम्परा	११८
प्रसा घोर प्रान	१४१
मधुर सपन	१४३
सजा	१४४
सरक्षण	१४५
मरा देश	१४६
मुक्ति	१४८
धारा	१४८
घायाशा	१५०
सर्वन्न	१५१
विकला	१५२
मयास	१५३
मवि तुलसी	१५४
दों जोसफ के भात्मपान पर	१५५
मुद खोरों स	१५७
मामोत्ते तुग स	१६१
अपीका	१६१
गुराद	१६४

हा तो — शब्दा के जरिये ही आपसी बात-चीत सम्भव होती है, चिट्ठी-पत्री में समाचार लिखे जाते हैं, पत्र-पत्रिकाएँ छपती हैं ममत्त्व प्रगासकीय काय शब्दों के द्वारा ही अपनी गति पाता है, राजनैतिक उद्घोषणाएँ, पत्र-वर्षीय योजनाएँ नेताओं के भाषण शब्दों के द्वारा ही अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं, मनुष्य के समस्त ज्ञान विज्ञान, धर्म, दशन व शास्त्रों का शब्दों की बोध से ही आविर्भाव होता है। उपन्यास, कहानी एवं कविता का अस्तित्व भी पूर्ण-रूप से शब्दों पर निर्भर करता है। पर साहित्य में — मुख्यतया कविता जब कलात्मक विधा के रूप में शब्दों 'के बहाने' अपना रूप ग्रहण करती है तो उस में प्रयुक्त शब्द केवल शब्द मात्र ही नहीं रहने — वे शब्दों व अनिश्चित 'कुछ और' हो जाते हैं। और शब्दों का यह 'कुछ और' होना ही कविता की साधकता है। शब्दों का अनिश्चित गौरव है। और इसी 'कितने-कुछ' की अनुपातिक गहराई व सूक्ष्मता पर ही कविता की श्रेष्ठता निर्भर करती है।

++

पद्य की रचना एक अभ्यास व कारीगरी है। काव्य की रचना एक कला है। प्रेरणा है। प्रतिभा है। कविता का आनन्द व सत्य शब्दों 'में निहित' नहीं होता, शब्दों 'से परे' होता है। अनिश्चित होता है। शब्दों के माध्यम से चरित्राथ या व्यक्त होने वाली अर्थ विधाओं में शब्द ही 'सब-कुछ' है। आदि भी, अन्त भी। उन में सलित सत्य या झूठ कबल शब्द ही है, जिसे कोई भी शिक्षित व्यक्ति बाच सकता है। पर कविता के सत्य व आनन्द का रस ग्रहण करने के लिए केवल शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं है। कविता के शब्दों में

निहित सत्य को केवल बाचने मात्र से काम नहीं चलता, उसे समझना पड़ता है, उसके मम को हृदयगम करना पड़ता है। तो कविता का सत्य जितना ही शब्द व भाषा से परे होगा, वह उतना ही गहरा, शाश्वत व श्रेष्ठ होगा।

++

शब्दा के 'ग्रहाने' व्यक्त होने वाली वाक्य-श्रृंखला में शब्द तो एक 'आवरण' मात्र हैं। शब्दा के उस भीने घूँघट के भीतर ही सत्य व सौंदर्य छिपा रहता है। कम से कम आवरण में अधिक से अधिक सत्य की छिपाने की दक्षता में ही कला की अष्टता अभिनिहित है। कविता में प्रयुक्त शब्दों के घूँघट में छिपे मम व रस की टीका का ग्रह करने में हजार गुना शब्दा का बूझा इकट्ठा किया जाय तो भी वह बात नहीं बन पाती। घूँघट में छिपे सत्य को निराधृत करते ही वह लुप्त हो जाता है। इसलिए कविता का अनुवाद सहज-सम्भव नहीं। वहाँ शब्दों के बदले शब्दों की हर फेर से काम नहीं चलता।

कविता में, शब्दा के मूल अवगुणन से अमूल सत्य के इंगित की झलक मात्र ही मिलती है। कविता में प्रयुक्त शब्द अपने अस्तित्व के ग्रहाने चिर मौन को व्यञ्जित करते हैं। और मौन की यह व्यञ्जना ही कविता का प्राण है, कला की आत्मा है — जो शब्दा के अवगुणन में अमूल रूप से छिपी रहती है।

++

प्रकृति, वस्तु-जगत एवं भाव-जगत की परिवर्धित अभिन्नता का जो स्वरूप, ऐतिहासिक क्रम में अनुपम ज्ञान पाया है — ज्ञान पायेगा, वही उसका तथाकथित सत्य है। उस तथाकथित सत्य की अभिन्न मर्यादा है अनुपम की अमनी भाषा — उसकी समूची अभिन्नताओं का एक मात्र माध्यम। जो नितात अपर्याप्त है, नितात भ्रामक है।

यथाय के अस्तित्व का स्वरूप तो सब एक है, पर उसको व्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं में विभिन्न ही शब्द हैं। सूरज, चांद बादल, पानी, पत्थर, तिनली, बबूल, आम, गुलाब, नाक, दात इत्यादि — जो हैं सा हैं — पर मानवीय भाषाओं में इनके लिए

अलग-अलग शब्द हैं । जो किसी दूसरे भाषा-भाषी के लिए सहज बोध-गम्य नहीं । तो शब्द सत्य व प्रतीक नहीं, उसकी विवृति मात्र है । विभिन्न भाषाभाषी की विभिन्न विवृतियाँ ।

मानवीय अभिज्ञता के इस विवृते माध्यम के द्वारा अभिव्यजित विवृत सत्य का दर पिछली तीन-चार शताब्दियाँ से मनुष्य को काफी गवित करता रहा, पर बीसवीं शताब्दी की डलान पर आते आते वह बहुत-कुछ ढल चुका है । धूमिल पड़ चुका है ।

विभिन्न भाषाभाषा में अभिव्यक्त ज्ञान, विज्ञान, धर्म, शास्त्र, ईश्वर, मीमांसा, पथ, आदि इत्यादि सब-कुछ सत्य की आति मूलक स्थापनाएँ हैं ।

तो मनुष्य के ज्ञान-विज्ञान की समस्त विधाएँ—जिन में सत्य का आदि केवल शब्द मात्र है—वह सब यथाथ की जानने की क्रमशः भ्रामक अभिज्ञता है । मनुष्य के अहंकार का थोड़ा दावा मात्र है । साफ शब्दों में बतलाना चाहें तो भाषाभाषी के माध्यम से उनलब्ध मनुष्य का समस्त ज्ञान-विज्ञान नितात मिथ्या है—क्योंकि उसकी सत्यता का प्रमाण मनुष्य की अपनी भ्रामक अभिज्ञता के अलावा और कहीं से पुष्ट नहीं होता । विज्ञान की जबरित तानाशाही ने अपनी इस दीनता को अब स्वीकार कर लिया है । जो इस तथ्य को नहीं जानते वे अब भी विज्ञान के दम से अभिभूत हैं ।

निरंतर बदलती हुई धारणाओं, मान्यताओं व स्थापनाओं का ' वैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रम ' ही मनुष्य के तथाकथित सत्य की आति का पर्याप्त प्रमाण है । यथाथ के अस्तित्व व स्थिरता की अपरि-वर्तनशीलता और उस से संबंधित मानवीय धारणाओं का नित्य परिवर्तन क्या मनुष्य की आति को यथेष्ट रूप से उदघाटित नहीं करता ?

++

वाक्य-बला में प्रयुक्त शब्दों के बहाने भ्रामक विवृति के बदले स्वयं सत्य प्रतिष्ठापित होता है । यही शब्द—सत्य के तथाकथित प्रतीक न हो कर स्वयं सत्य को धारण किए हुए होते हैं । इसलिए

गद्या के माध्यम से अपना स्वरूप ग्रहण करने वाली मातृवीय विद्याया में केवल काव्य - कला के बनावा सत्य की व्यञ्जना विधी भी प्रायः विद्या में नहीं होती । गद्या के सीधे जाल से सत्य को नहीं पकड़ा जा सकता । कविता में प्रयुक्त शब्दा की अप्रत्यक्ष शक्ति ही सत्य को घामने में समथ होती है । मानवीय जगत में केवल कलाकार ही सत्यदृष्टा होता है ।

किंतु भाषा के इस अयाप्यत भ्रामक माध्यम के सहारे कवि सत्य - दृष्टा के इस पद को क्योकर पाथ ? प्रश्न बड़ा सीधा है । बड़ा जटिल है ।

++

समस्त ज्ञान विज्ञान की उपमविद्या के वाक्मूढ मानवीय जीवन की यह विडम्बना है कि क्वातिप्राप्त वैज्ञानिक या विद्वान का चेला भ्रात्र भी उतना ही अवोध, निरोह व अमहाय पैदा होता है, जितना कि हजारों लाखों वर्ष पूर्व आदिम ज्ञान में हुमा करता था । उन्मुक्त पारिवारिक व सामाजिक आलावरण के अनुगत में समय के साथ - साथ वह सारी बातें सीमित है । बैठना, खड़ा होना, चलना, तुतलाना, बोलना, पढ़ना लिखना, किसी कला में दक्षता हासिल करना आदि यह सब — वह सब ! और हा सब का एक - माय माध्यम है — यही अपर्याप्त मातृवीय भाषाएँ । बोधन की प्रवीणता हासिल करने के बाद मुहप्राप्त में इन्ही मानवीय भाषाया व पारवोय की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है । और तत्पश्चात अपनी अपनी मयादिन शिक्षा के दायरे में भाषा के माध्यम से प्रचलित ज्ञान - विज्ञान को गनै शनै उपलब्ध कराया जाता है । प्रचलित कलात्मक विद्याया से परिचित कराया जाता है । जो सामाजिक रूप से जाना गया है — वह व्यक्ति को सीखा जाता है । जो सामाजिक ज्ञान की मर्यादा है — वह वैयक्तिक ज्ञान की मर्यादा बन जाती है — अपना अपने गहनिक व अपनी - अपनी योग्यता के सानुपानिक दायरे में । इस सब सामायता के बीच अपवाद स्वरूप कुछ अप्रुव प्रतिभाएँ भी उधन पड़ती हैं ।

शैक्षणिक व निजी योग्यता के विभिन्न दायरों के फलस्वरूप व्यक्ति

की अभिज्ञताएँ, धारणाएँ, स्थापनाएँ, मायताएँ तथा भावनाएँ भी विभिन्न हुआ करती हैं। एक ही सामाजिक सत्य को हजारों लाखों मनुष्य हजारों लाखों स्था में जानते हैं। और अपनी उसी जानकारी को वे अंतिम समझने लगते हैं। अपनी अपनी स्थापनाओं को ही एक-मात्र सत्य समझते हैं। पर सच बात तो केवल यही है कि मनुष्य की एक भी धारणा या स्थापना न अंतिम है और न एक-मात्र सत्य है। पर अपने अपने सामाजिक दायरे में जकड़े व्यक्ति की विवशता है कि वह अपनी मायताओं को अंतिम व एक-मात्र सत्य समझ लेता है। चाहे वह व्यक्ति किसी भी पक्ष या वाद को चलाने वाला हो—चाहे वह अनुगामी हो। प्रयत्नक व अनुगामी दोनों ही इसी मजदूरी के शिकार होते हैं।

पर इस सचाई तक पहुँचने में भाषा के माध्यम से चरितार्थ स्थापनाओं की बदलती वैयाख्या चलते रहने के लिए आवश्यक हैं।

स्थापनाओं की वैयाख्या को वैयाख्या समझ कर उसे ग्रहण करने के बाद निरंतर छोड़ते रहने में ही मनुष्य की मुक्ति है।

स्थापनाओं को ग्रहण करने के अलावा, किसी भी व्यक्ति का कहीं भी निस्तार नहीं है, पर साथ ही साथ उनका परित्याग करने के महत्त्व को भी समझ लेना चाहिए।

कोई भी कवि या कलाकार पूव नियोजित सामाजिक दायरे में कैद होने के कारण, प्रचलित सामाजिक मायताओं से ऊपर नहीं उठ सकता, मुक्त नहीं हो सकता। पर प्रतिबद्धताओं की इन अनिवार्य वैयाख्या पर लगड़ते-लगड़ते चल कर ही कवि या कलाकार को वह छोड़ते रहना चाहिए, तभी वह अपने पांवों पर सहज गति से ढीढ़ सकेगा। प्रतिबद्धताओं की वैयाख्याओं से ऊपर उठ सकेगा। उन्मुक्त कला की सृष्टि कर सकेगा।

अपने आत्म-मुक्त स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सजग कवि को प्रतिबद्धताओं की वैयाख्या का सहारा लेना भी जरूरी है, पर उस से भी ज्यादा जरूरी है उन्हें एक-एक करके छोड़ते रहना।

कोई भी कलाकार चाहे कितना ही थप कथो न हो प्रतिबद्धता

का बंधन उसे एक ऊंचाई से ऊपर उठने में सदैव बाधा उपस्थित करता है। उस नीचे की ओर खींचता है। इसलिए किमी कलाकार को यदि प्रतिबद्ध होना ही है तो अंत में केवल अपने प्रति, अपनी कला के प्रति, अपनी विगुद निष्ठा के प्रति।

कला की अप्रतिबद्ध सृष्टि ही कलाकार की सर्वोच्च जिम्मेवारी है। उसका सर्वोच्च श्रेय है।

कवि या कलाकार के सामाजिक उत्तरदायित्व के नारे का शोर-गुल अब काफी क्षीण पड़ता जा रहा है। उसका केवल इतना ही महत्त्व है कि शुरुआत की स्थिति में प्रचलित धारणाओं का बकल्पिक समर्थन उसके अस्तित्व की लाचारी है। उसे किसी न किसी मापता में चिपट कर ही अपनी मुक्ति पानी है।

++

कला की स्वयं अपनी सृष्टि ही उसकी श्रेष्ठतम सामाजिक उपादेयता है। किसी भी सामाजिक उपयोगिता का माध्यम बनना उसके लिए कतई शोभा की बात नहीं। और यो कला की सामाजिक उपादेयता कोई हो भी नहीं सकती। लिखने के पैर से वक्त-जहूरत पाजामे का नाट्य भी डाला जा सकता है पर लिखने की तुलना में पैर की यह कितनी क्या उपादेयता है।

जीव की प्रारंभिक उत्पत्ति व उसकी रक्षा के लिए भित्तों के ऊपर बठोर आवरण का संरक्षण जरूरी है पर एक समय के इसी जहूरी सांचे को तोड़ कर बाहर निकलने में ही पक्षी की मुक्ति है। किसी भी स्थापना की प्रतिबद्धता एक कवि, साहित्यकार या कलाकार के जीवन में केवल इतनी ही उपादेयता रखती है। इस से आगे की उपादेयता को अंगीकार करने से पक्षी की मुक्त उड़ान में बाधा ही उपस्थित होगी।

पक्षी की तरह उपलब्ध बठोर संरक्षण के रूप में माया व प्रचलित मापताओं के आभक्त दायरे को तोड़ कर ही कवि सत्य की खोज के लिए निरन्तर उन्मुक्त गगन में विचरण कर सकता है।

++

‘कितने समय तक मैं अपनी कलम को तलवार के समान ताबतवर समझता रहा, पर अब महसूस करता हूँ कि मैं कितना असमर्थ हूँ।’ जी पॉल सात्र की तरह एक दिन हर बलाकर को यह सचाई महसूस करनी ही चाहिए।

++

यदि किसी बीज को वापिस अनेक नये बीजा के रूप में फलना है तो अपने परंपरागत स्वरूप का माह छोड़ कर मिट्टी में गडना होगा, नष्ट होना होगा — तभी — केवल तभी वह नये बीजों की उत्पत्ति कर एकन में समय होगा। इसी प्रकार यदि कवि को नये रूप में फलना है, अपनी बला का प्रस्फुटन करना है तो प्राप्त स्वरूप, संस्कार, भावना, विचार, भावना व भाषा तक को नष्ट करना पड़ेगा।

एक बार भाषा के साथे में ढलने के बाद कोई भी सत्य— सत्य नहीं रहता वह ‘भूट’ बन जाता है। मानवीय भाषा की यही एक-मात्र विहम्बना है कि किसी भी सत्य को अपने में ढालने के बाद उसे मिथ्या बना देती है, व्यर्थ बना देती है। कोई भी वाद, धर्म या दशन भाषा के रूप में अपना अस्तित्व ग्रहण करने के बाद सधषा अपनी शक्ति खो देता है। पशु बन जाता है। सत्यदृष्टा कवि के लिए सचाई की इस मर्यादा का समझना भी आवश्यक है। और इसका साथ-साथ भाषा व प्रचलित कलात्मक विधाओं के परे सत्य, सौंदर्य व आनंद को समझना भी जरूरी है।

++

यथाय का भ्रम बहुत अरसे तक वैज्ञानिकों व बुद्धिवादियों को छलता रहा है, अब कवि को सत्यदृष्टा बनने के लिए स्वप्ना की वास्तविकता और मग-तृष्णा की अमिट छलक को सत्य को समझना होगा। बुद्धिवादियों की गलीज बौद्धिक शक्ति का इस से बड़ा और बसा प्रमाण चाहिए कि जर्मनी के नाजीवाद व फासिज्म की उन्ही की बुद्धि से ही जन्म मिला था। मानवीय जगत को विध्वंस से बचाने के लिए मनुष्य को राजनेता, वैज्ञानिक व बुद्धिवादियों की अपक्षा अब सत्यदृष्टा कवि का मुखपेदी होना होगा। यह कहा तक इस उत्तर-

दायित्व को निभा पायेगा — यह भविष्य के अधियारे में छिपा है । और यह तभी संभव होगा जब कवि अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को भुला कर केवल अपने में और अपनी कलाकृति में ही खोया रहेगा — उसे न अपने श्रोताओं की, न अपने देशकों की और न अपने पाठकों की रचना भी अपेक्षा होगी । कलाकृति की सफलता तब किसी की मुश्ताक नहीं होगी — न सामाजिक प्रतिष्ठा की, न प्रसिद्धि की, न रसिका द्वारा अर्जित प्रशंसा की और न आलोचकों की ।

आलोचना कविता के मर्म को स्पष्ट न करके उसे दूषित ही करती है ।

++

कविता का मूला तो प्रकृति का ही होता है, पर उसे पढ़ने वाले कई पाठक होने हैं और वे मानसिक स्तर, समझ, भावना, सौंदर्य-सुभूति व समझता की विभिन्नता के फलस्वरूप अपनी विभिन्न मानसिक गठन के अनुसार मजिद एक ही कला कृति को नये-नये रूप में ग्रहण करते हैं और उस से नया ही आनन्द प्राप्त करते हैं ।

कोई भी कलाकृति अपनी मजिद प्रशंसा में आनन्द रहित होती है । कृति की संपूर्णता के बाद आत्म-सम्बोधित कर अभिभूत भले ही हो जाय, पर पाठक के आनन्द में उसका आनन्द कतई भेद नहीं पाता । पाठक का अपना ही निजी आनन्द होता है । वाक्य की आलोचना पाठक के आनन्द को नियंत्रित कर देती है, उसे झुठला देती है । इसीलिए प्रस्तुत वाक्य-पुस्तक की आलोचना के अनिर्दिष्ट होने पर कुछ पृष्ठों पर बातें कही हैं । और भाषा की लिखावट में अपना स्वल्प प्रतिष्ठापित करने के बाद अपनी पवित्रता व अपनी सत्यता की सवधानों की हैं । इस सत्य का धेनना के बावजूद भी मैं निगने पढ़ने की भाँति में कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा, अनुपम ज्ञान के इस अमि-शाप से कोई भी व्यक्ति छुटना नहीं रहे सक्ता — यही सत्य से बड़ी हार्मोन्सल निष्कर्षना है ।

विजयदान वेपा

शब्दों का घूँघट

वचन बद्ध

अब पुन लौटना है
आ मेरे निबन्ध सख्त बल्लभ
भोगे हुए क्षण
तुम्हें यही छोड़ता हूँ ।

जाता हूँ यह गीतकर
तुम्हारे पास पुन लौट आऊंगा ,
अगर वही अथहीन प्रयास के
प्रवाह में बहने से बच पाऊंगा ।

कभी कभी इस बीच
याद मुझे आते रहना ,
वचन जो दिया है तुम्हें
उसे बताते रहना ,
धीरे से मेरे मन में
गुनगुनाते रहना ,
गीतों के माज में
हलके से बजाते रहना ।

तर्क भावुकता

तक
ठोस तक सिफ ,
मेरी रग रग मे
जमा है ठंडा कठोर बर्फ ।

तरल भावुकता
उममे बहे कैसे ?
भावुकता और तक
साथ साथ रहे कैसे ?

हा अलबत्ता कही वही चट्टानों के मध्य
भावुकता चुपचाप वही है ,
जो कभी गीत मे
मीड - सी ध्वनित होती है
भावुकता वही है ।

आज का आदमी

घर की देहरी पर
जिसे सजाया जिसे रचाया
पर छोड़ गया घर सूना
उस घर की जैसे भ्रमना ,
जिसका कुछ सदभ नहीं आघार नहीं
कोरी बंसी कल्पना ।

जो महावाक्य तो क्या
गीत नहीं मुक्त तब नहीं
नहीं शब्द भी नहीं
बस एक अक्षर है ,
इससे नहीं अपिब हुमा तो बस
एक हस्ताक्षर है ।

गीत का औचित्य

यह गलत है
कि जो कुछ घटता है
वह सभी कुछ कहना चाहिए ,
यह तो कुछ ऐसी बात हुई कि
सही गलत जो कुछ भी होता है
उसे चुपचाप सहना चाहिए ,
जिधर भी धार ले जाय
उधर ही बहना चाहिए ।

आखिर कविता बर्फ
वैयक्तिक दैनन्दिनी तो नहीं ,
महज घटनाओं की बदनी तो नहीं ।

जो घटे
और घटकर मन में छोड़ जाय छाप ,
मन की घटकनो में
जिसकी बजे पद चाप
जो कहना तो चाहा जाय
पर सहज ही कहा नहीं जाय ,
और जिसकी कशिश कुछ ऐसी हो
कि जिसे बहे बिना
रहा भी न जाय ।

अभिव्यक्ति की खोज

बहुत दिनों से
मैं दूढ़ रहा
बहुत राग बहुत स्वर
जो मुझे अभिव्यक्ति देगा,
मेरी दूटती आस्थामो को
जखरी भक्ति देगा,
मेरे हूबते साहस को
जखरी शक्ति देगा,

बम्बी तक सीधी सरल राह थी
गीता ने मुझे उन पर
सहज ही बलाया था।
अब रास्ता रोकने कई मोड़ आये हैं,
एक से दिखते हैं
पर जो एक था
उसे कहीं पीछे छोड़ आये हैं,
बम्बी बम्बी तो लगता है
जो आज तक था
उसे सम्पूर्णत तोड़ आये हैं।

मेरे तो राह के साथी
राह के सम्बल
गीत ही रहे हैं,
इन्हीं के सपारे
सत्य
आज तक गहे हैं।

इसलिए आज जो सत्य है
इ ह मुझ से- 11

ऐसे स्वर खोजने पढ़ेंगे ,
नहीं तो स्थिरता से अभिशप्त होकर
मेरे गीत निश्चय ही सड़ेंगे ।

क्यो चुप हूँ मेरे गीत

मेरे मन से
कभी उमड़ते थे निम्कर
मीठे गीतो बे ,
कभी रोप की आधियों से प्रेरित
प्रचंड गीतो का महानाद उठता था ,
तो कभी वेदना से रुद्ध
घुट घुटे
मन्द करुण गीत
बारी से बज उठते थे ,
पर आज
मौन हूँ मेरे गीत ।

ऐसा तो नहीं है कि कोई भीःहृदय
अब प्रेम से नहीं जुड़ते ,
कभी भी बहती तो है ही
अजल प्रेम की अक्षय मदाकिनी
दोनों ही किनारा को सींचती भिगोती
जीवन को सजोती ,
फिर भी
क्यो हूँ मेरे गीत
चुप और उदास ?

ऐसा तो नहीं है
कि विनाशो के उनचास पवन
अब बहा नहीं करते ,
हैं अब भी बहुत
जो सहते ही सदा रहते ,
बहने को बहुत विकल

पर जो चुप हैं
 कहा नहीं करते ,
 अब भी हर मन में घुमड़ता है
 आधियो का प्रचण्ड वेग
 कमी जो सहेजा था ,
 इन्ही के मौन स्वर को
 स्वर दिया था मैंने ।
 इन्ही के रोप को
 मैंने दिशा दिशा में भेजा था ,
 इन्ही आधियो ने मन में आ
 मन की बशी को बजाया था ,
 मेरे मन में जो नपुंसक रोप था
 उस रोप को सोते से जगाया था ।

आज मेरे जीवन के बद कपाटों को
 ये आधिया खटखटाती हैं
 झकझोरती हैं ,
 पर मन क्या सो गया है
 या फिर मन का रोप
 मर गया है खो गया है ?

ऐसा तो नहीं है कि
 नयन अब रोने नहीं हैं ,
 दुखों का उठता है
 रीरव घोर
 धक् गये नयन
 पर सोते नहीं हैं ।

छनवने की छनवता था
 एक ही मन ,
 मेरे मन में घुमड़ जाता था
 उमड़ता हुआ सावन ,

कौंध उठनी थी रह रह
एक तपन एक तडपन ,
अब तो बरसत है
अनगिन बिबल नयन ,
फिर भी क्या
भीगता नहीं मेरे मन का आगन ।

मैं एक भीड़ से घिर गया हूँ
जिस भीड़ से मेरा मन नहीं मिलता ,
इस भीड़ के बेमतलब स्वर
सुनने ही नहीं देते
स्नेह की मीठी यक्षी
या राप का घनघोर रौरव ।

इस भीड़ के अनगिन चरणा ने
ढक् लिया है
मेरे मन के आगन का ,
तभी तो सायन का अनवरत
गिरता हुआ जल
मन के आगन तक पहुँच ही नहीं पाता ।

डरता हूँ
वही इस भीड़ में घुलकर
स्वरो से अनजाना नहीं हो जाऊँ ,
भीड़ के शोर को सत्य समझूँ
भीड़ के शोर में नहीं खा जाऊँ ।

अनगाये गीत

मेरे अतस म वही
गीतो का खोन है
जैसे भूमिगत जल ,
इसके होने का अहसास
न कह सकने की विवशता
मुझे व्यग्र पारती है
एक टीस सी मन में समग्र भरती है ।

हाथ प्रेरणा कब
मन के पोरों में
अपने हाथ डाल
इस खेत को उमारेगी
मुझे घुमडती व्यथा से उबारेगी !
कब गीतो की जाह्नवी बहा
मैं सबके मन सरसाऊंगा ,
य जो इतने मुरझाये मन हैं
कब उन्हें हरसा पाऊंगा !

तलब

गीता की तलब
बहुत ही अजब
यों तो महीनो तब उही आती
पर जब आती है
जब तलब गा नहीं पाती
तब तलब बहुत ही सताती है ।

गीत सुनाता हूँ

सो मैं गीत सुनाता हूँ
मधु के घट छनवाता हूँ
सबको गीत बनाता हूँ ।

गीत सुनाते युग बीने
मेरे बल्लभ नहीं रीते
जाने कितने दिल जीते
सबकी व्यथा भुलाता हूँ ।

नयन किसी से महज मिले
मन मे जैसे फूल खिले
सजे फूल के सिलसिले
ये सौरभ सरसाता हूँ ।

आज किसी का मन रोया
जैसे चमन चमन रोया
हसता हुआ पवन रोया
इनका मन बहलाता हूँ ।

जिसकी प्यार सहेली है
जैसे नार नवेली है
जीवन एक पहेली है
मैं इसको सुलभाता हूँ ।

जुलम जोर पर आता है
आखें झूठ दिखाता है
"याय कभी डर जाता है
तब सघप सजाता हूँ ।

सार्थक गीत

ऐसे गीत नहीं गाता मैं
जिनका अर्थ नहीं,
नहीं गीत का एव' शब्द भी
मेरा व्यर्थ नहीं ।

पुलक हो एक पलक की भी
गीत से शाश्वत कर देता,
लाख नठो से मुखरित हो
खुशी से मानस भर देता ।
मैंने जिस क्षण को जी डाला
मिटा सके उस क्षण को ऐसा काल समय नहीं ।

जुलम की आधी में खुलकर
गीत के दीप जलाता हूँ,
अधेरा शेष नहीं रह जाय
रात के चीर जलाता हूँ ।
गीत की दीप दिखाओ ने
तनिक भी तम का छोड़ा शेष शिवत नहीं ।

हृदय के सूखे मरुथल में
गीत की गंगा बह आई,
पुन आशाओं से प्लावित
भुरभती मन की अमराई !
मैंने जिस मन को छू डाला
रस की घारा नहीं बहे सम्भव अनर्थ नहीं ।

प्रवाह से दूर

गीतो को खोजने
दूर यहा आया हू ।

वो जहा मैं रहता हू
दुख सुख सहता हू
वो तो एक प्रवाह है
जहा लगातार बहता हू ।

वहा समय कहा मिलता है
सोचने का समझने का
गाने का या बजने का
रुठने का या सजने का ।

उम्र प्रवाह में जब आया था
तो सोच नहीं पाया था
इसका प्रबल वेग प्रलयकारी है
जिसकी बहा ले जाने की शक्ति बड़ी भारी है ।
वहा मैं करता नहीं कराया जाता हू
वहा मैं जीता नहीं जिलाया जाता हू ।
भय है किारो का बोध ही दोष नहीं रहे
मैं नि सत्व हो जाऊ प्रवाह जो है वही रहे ।
वहा सोच नहीं पाता हू
इसलिए गीत नहीं गाता हू ।

सोचो से दूर गीत नहीं होते हैं
अपनी हस्ती से अलग गीत कहीं होने हैं ।
भन मे कुछ सोच हो तो उसे दूढ़ लू गालू
अपनी बोझ बात हो तो मुस्तालू पालू
प्रवाह के वेग से बच अपने को सम्भाल

मेरा कुछ अपना हो वो हव नहीं जाय उसको बचालू ,
इसलिए वहा से अपने को दूर यहा लाया हू ।

गीतो बो खोजने
दूर यहा आया हू ।

अन्यथा

समय के लगाम बाध
सही ओर मोड़ दे,
विक्रम को करें जड़
उन हड्डियों को तोड़ दे ।

दिग्भ्रात होते आज को
सुभरते अविष्य से जोड़ दे,
गा सके तो गीत ऐसे गा
अन्यथा गीत गाना छोड़ दे ।

गीत खो गये

मुझे गीत गाये हुए
बहुत दिन हो गये ,
बहुत पुरानी बात है
जब पल - छिन रो गये ,
याद नहीं पड़ता
व्यथताओ , व्यस्तताओ मे
कब रात गये गीत सो गये ।

दायरे

बहुत छोटे हैं दायरे
मेरे चिंतन के
सपनों के ,
बहुत सीमित हैं मुहावरे
मेरे दर्दों के ,
इसलिए
बया भय रखते हैं
पैमान
दिनों के महीना के वर्षों के ।

उही सीमाप्रा मे बधी
बहती गीतो की धार ,
एक ही कूल से
बधा गीत का पारावार ।

विडम्बना

पड़ोस के कमरे में
किसी ने दस्तक दी ,
मैं चौका
समझा मेरा कोई
आया है ,
द्वार खोला
वह बोला
मैं आपके यहाँ नहीं
पड़ोस में आया हूँ ,
गीत मेरे
मुँह से ही
ऐसा क्रूर
उपहास क्यों करते हैं ?

अपराधी

मेरा कसूर क्या है
क्यों महसूसता मैं अपने आप को
अपराधी ?
क्या इसीलिए
कि मैं शब्दों को मोड़ता नहीं
बिछाता नहीं ,
छनको अपने से स्वतन्त्र
अनोखे परिधान
पहिनाता नहीं ।
धँसे यह कोई कठिन काम नहीं ,
मौन शब्दों की बिसान ही क्या है ?
उनसे जो भी चाहा जाय
देंगे व्यक्तव्य
आविचन को भी कर देंगे भव्य ।

मेरी एक कूठा
बताई जा सकती है क्रांति ,
घुहरे-सी फैलाई जा सकती है
सटहीन आति ।

लेकिन नहा
मुझ से यह नहीं हागा
या तो होगा ही नहीं
यदि होगा
तो वही जो सही होगा ,
क्योंकि शब्द ने मुझे नहीं
मेने शब्दों को भागा ।

शब्द और मैं

मेरा यह अपराध है
कि मैं शब्दों को अपने से अलग नहीं जीता ,
उनको गिलास में भरकर
पानी की तरह नहीं पीता ,
अपनी कुठाघो को क्रांति के परिधान
मैंने नहीं पहिनाये ,
मोचों पर अपने आप को झोके बिना
युद्ध के शखनाद नहीं बजाये ।

बिना खुद जले
आग के दरिया नहीं बहाये ,
तूफानों को दबास में
घोले बिना
तूफान के वेग नहीं बरपाये ।

खुद तटस्थ रहकर
श्रीरो की तटस्थता की
मैंने नहीं नकारा ,
अपराधी हूँ
अमिश्रित हूँ
मैं इस तरह
शब्दों की अतरज
धुरी तरह हारा !

मेरे छन्द

मेरे छन्द

शब्द की माटी के हैं कलश ,
कि जिन में मिट्टी के बटो के आवेग भाव का जल
करता छलछल ।

अभी नये हैं

इन में मिट्टी की सौंधी सौंधी गंध अभी आती है ,
पनिहारिन कविता इहे शीश पर घर
फलती धरती के गीत अभी गाती है ।

इन कलशों का जल
जो पनिहारिन मर कर लाई है ,
उस पानी का बल
प्यासी धरती को मिल जाये
धरती का अतमन खिल जाये ,
खेतों के बनें दुकूल
धरती की लाज उचाने
खेतों के चीर सहज मिल जायें ।

स्फुरण

जितनी ही बार
मन को सहज स्थिति मे पाता है ,
तो मन में खिलने वाला
गीतो का फूल मुस्कराता है ।

सामजस्य

जब यह धरती हरी होती है
उसकी गोद मूनी नहीं भरी होती है,
तो लगता है
मेरे गीत
जो सूखे थे हरे हो गये
जो कभी सूने थे
आज घने हो गये

इस धरती में और मेरे गीत में
कुछ ऐसा नाता है,
एक में उमरता है बीज
दूसरे में उग आता है ।

गीत की नियति

मैंने एक दिन गीत का बीज मन में बोया
और मन को दूर कहीं
वीराने में छोड़ आया ,
सोचा
यहाँ मैं भीड़ से घिरा रहता हूँ
मयानक धक्कम-पेल सुबह शाम सहता हूँ ,
इस में गीत नहीं पनपेंगे
और कुछ भी पनपे भले ,
ये गीत बड़े नाजुक हैं
मुरझाएँगे भीड़ के पैरों तले ,
इह भीड़ से दूर
साफ खुली हवा मिले ,
सुहानी धूप इह नहलाये
मद भरी चादनी सहलाये
ता हो सबता है
गीत का भीठा सुहाना फूल खिले ,
यह सोच कर
उस दिन
मन में गीत का बीज बोकर
उस वीराने में छोड़ आया था ,
बिना मन के
मैं एक प्रवाह में बहता रहा ,
बिना किसी एहसास के
काम की भार को सहता रहा ,
इसी उम्मीद में कि विपाक जिंदगी की
जहरीली छाया से बचकर
निश्चय ही गीत का फूल खिलेगा ,
और जब कभी

मन को लौटाने जाऊंगा
 वा अनायास
 खिलता हुआ मुस्कराता हुआ मिलेगा ,
 और एक दिन जब मैं
 बड़े उत्साह से
 गीत का फूल लेने लौटा ,
 तो पाया
 फूल तो फूल
 जिंदगी के स्पर्श से अनशुभा
 बीज भी धूल हुआ ,
 जिंदगी से अलग रहकर
 मन भी सूखा हुआ बबूल हुआ ।

अनछुए सूत्र

मेरे गीत म कुछ होना चाहिए
जो आज तब नही हुआ ,
मुझे उन अनछुए सूत्रों को छूना चाहिए
जिन्हें आज तब किसी ने नही छुआ ।

गीतों में वो कैसे हो
जिसे मैं न जानू
गीत उसे क्यों स्वीकारेंगे
जब तब मैं उस अनजाने को न जानू ।

जो मेरे मन में है
वो बीज
फूटता है रेंता है अगड़ाई
गीत में उभरता है
गूँजती जैसे राहनाई ।

यह अबुर फूटे तो
फिर उसे सजाने की बात है ,
मन में एक धुन उमरे तो
फिर साज बजाने की बात है ।

यह बीज जब मन में
समायेगा नही पड़ेगा नही ,
जब तक हल का फल
मन में गड़ेगा नही ,
यह गीत कभी बढेगा नही ।

बीज अगर आकाश से
आकर

यों ही सतह पर पड़ेगा ,
तो वह पनपेगा नहीं
केवल सड़ेगा ।

सिद्धि

जो
सम्पूर्णत मेरा हो
या सम्पूर्णत औरों का हो
यह गीत का विषय नहीं
बि-यास नहीं ,
जो औरों का होकर भी मेरा हो
गीत की लय वही सुहास वही ।

समर्थ गीत

गीत मेरे
सबकी धडकना को सुन
उनकी बात को समझ ,
उनकी घमनियो में वह
उनकी धडकनो में बज ।

अपने आप बैठे गुनगुनाना क्या
अपने आपको अपनी बात का क्या ध्ये ?
जो सभी की धडकनो में जा यसे
साथक वही है बात
वही गीत है समर्थ ।

प्राप्ति

यह आसपास जो सूनापन है
इसने ढूँढ़कर
मुझे लोटा दिया है ,
अस्तित्व के विनाशकारी हाथ से
अस्तित्व को उबार लिया है ।

मेरे सोचने के सदर्भ जो धूमिल पड़ गये थे
गीतों के श्रोत जो अनगहने होने से सड़ गये थे ,
उन सदर्भों को मैंने फिर जाना है
भूले हुए गीतों को फिर से पहचाना है ।

यह सच है उन गीतों में पहले की बात अब नहीं है
मैंने अपनी या औरा की पीर अब सही है ?
कभी जो सही उस पीर को ढूँढ़कर निकाला है
उसी से उजागर यह गीत का उजाला है ,
दूर वही दूर बुझते हुए दीप का प्रकाश
पा सका है गीत में हलका सा आभास ।

कि मुझको लिखना है एक गीत

मेरे मित्र मुझे कहते हैं
तेरे गीत कहा रहते हैं ?

इतना समय हो गया

सुनाया नहीं एक भी नया ।

कि उनको बात बतानी है
कविता मेरी नहीं कहानी है ,
मन मे मेरे सोये कई प्रसंग
कलम को नहीं लगा है जग ।

इनको कैसे बात कहूँ

मीन यो बयोकर इतना हूँ ,

नहीं हा जाए नाराज

ये मेरे साथी मेरे भीत ।

इसी से लिखना है एक गीत ।

कि पहले किसकी बात लिखूँ
कि इनसे किसकी बात कहूँ ?

यहा पर जितने भी हैं लोग

लगा है उन सबको ही रोग ।

ये हैं सभी लोग हैरान

सनी मे छुपा एक दौतान ,

लाख बचने की इनकी चाह

मिलती नहीं एक पर राह ।

इनको कथा सुनाऊंगा

मनो की व्यथा जगाऊंगा ,

इ-ही के घर का एक प्रसंग

कि जिसकी कथा करूँ वर्णित

यहा कल आई थी बारात

मदन - दूल्हे को लेकर साथ ,

सचि ने रूख बिया शृ गार
द्वार पर भूमे बदनवार ।

रूप का सागर सहसाया
देह मे यौवन सरसाया ,
बूबारा यौवन फूज उठा
अथाह सुख मन म भूम उठा ।

सच मे इसी दिवस के लिय
वि जिसके सोलह वष जिय ,
मन म उमड़ी चाह अथाह
सुख की चरम यही परिणति ।

बाह बनने को मातुर हार
बक्ष बलशा मे उमड़ा प्यार ,
होठ ये मधु के सागर है
नयन लज्जा की गागर हैं ।

गाल पर कमल फूल आये
चाल मे रूप फिसल जाये ,
रूप के छलके लास बलश
उठा है यौवन छलस छलस ।
लो ये सधे नयन के बाण
इनसे नहीं किसी का बाण ,
रूप से दुनिया को जीते
समपण लेकिन जिसकी जीन ।

हा यह दुलहन सीता है
राम जिसका मनचीता है ,
रास की रानी राधा है
वि जिसका प्रेम अगाधा है ।
महाकवि की यह शाकुंतल
देह घर आई या मूमल ।

नहीं क्या ढोले की मरवण
 प्रेम भर जिसका जीवन धन ।
 या फिर स्वयं प्रीत साकार
 मीत का दूढ़ रही आकार ।
 देह की वीणा पर गुजित
 रूप का अजर - अमर संगीत ।

द्वार पर शहनाई बोली
 गीत की सरिता सी डोली ,
 बहुत से मधुर कण्ठ बोले
 हृदय के राज कई खोले ।
 कुमकुमी चरण नाचने लगे
 पायल के मधु सुर-से पगे ,
 खुशी से चहक उठा हर मन
 मधुर स्वर से महुका धामन ।
 किसी ने एक ठिठोली की
 फूल की बिखरी लड़ी लड़ी ,
 सुखो का सावन आया है
 बरसने वाली है झड़ प्रीत ।

द्वार पर क्यों है हाहाकार
 राम को सीमा नहीं स्वीकार ।
 सभी हैं कहते यही पुकार
 ' राम को सीमा नहीं स्वीकार ।
 नहीं तोने की लका है
 सिया का रूप बलका है '
 रूप तो सीता का नश्वर
 करे क्या राम रूप लेकर ?
 बकयी मले नहीं मांसे
 दशरथ वचन नहीं त्यागे ,

‘मोल के बिना नहीं कुछ भी
प्रीत की मुझे शेष परतीत ।’

सिया को राघव पाना हो
जनक को मोल चुमाने दो ।
सिया की सेज सजाने को
आज भियला विक्रि जाने दो ।

राम को राज्य चाहिए ही
सिया को वन में जाने दो ,
रूप यौवन से क्या होगा
इसे वैधव्य सजाने दो ।

जिन्दगी होती है नीलाम
धुकामो दाम मोल लो राम ,
राम ने रावण से सीखी
ज्ञान की हार स्वर्ण की जीत ।

राम को सिया नहीं प्यारी
स्वर्ण का मग ही प्यारा है ,
कृष्ण ने कचन की खातिर
सहज राधा को हारा है ।

मरवणी विलख रही ढोला
छोड़ पुगल को जाता है ,
प्रीत की रीत बनी ऐसी
जहाँ कचन से नाता है ।

स्वर्ण की नहीं निशानी है,
शकुंतल अन पहचानी है ,
प्रेम की मर्यादा बदली
प्रीत की पलट गई है रीत ।

तुम्हारे मन में ही यह राम
तुम्हारे घर में यह सीता ,

प्रेम के गीत सुनाने का
 कि लगता जैसे युग बीता ।
 प्रेम का मोल कहा है बेध ?
 रूप के बदले सारे बेध
 मानवी सारे ही रिश्ते
 अर्थ के घावा से रिसते ।
 रूप का गीत चाहते थे
 सुनाऊ लेकिन वह कैसे ?
 इसी से छद् रहे थे मौन
 मौन था बबिता का संगीत ।

गीत पुराने गा सकता हूँ

किंतु तुम्हारी इच्छा हो तो
गीत पुराने गा सकता हूँ ,
अपने उर को उद्वलित कर मैं तुमको बहला सकता हूँ ।
उमादो को वाघ स्वरो मे
आवेगो को लय मे भरकर ,
वैसे मैंने गीत बहुत से
रच डाले हैं सुंदर सुंदर ,
[एक दूसरे से बढ बढकर]
अपने इस सयत स्वर द्वारा उनकी होड बता सकता हूँ ।
उन गीतों की बात न छोडो
उन मे था सजुचाया बचपन ।
बात बात मे रो देता था
घडी घडी मे होता उमन ,
[पलक पलक मे खो जाता मन]
यौवन की सीपी मे भरकर अब सागर सहारा सकता हूँ ।
इन गीतों को गा गा करके
मैंने तुमको भुला दिया था ,
जब तुम छोड गई तब इनको
भीत हृदय का बना लिया था ।
[धीरे से गुन गुना लिया था]
तुमको खोकर प्यार तुम्हारा इन गीतों मे पा सकता हूँ ।
अब जाकर समझा हूँ क्यों है
रोप तुम्हारा इन गीतों पर ,
भुला सवा मैं याद तुम्हारी
इन गीतों को ही गा गा कर ,
[अपना मन मिलमा बिलमावर]
मुश्किल से जो भुना सवा वह पीछा पुन जगा सकता हूँ ।

सदर्भ विहीन

कहने को नहीं कुछ भी
बया सुनाऊ गीत ?

क्षण भोगते मुझको
नहीं मैं भोगता हूँ क्षण ,
जिसे कह सकूँ जीना
वह कहा जीवन ?
अस्तित्व से सनस्त यह
जीवन बहुत भयभीत ।

कहा है याद उनकी शेष
जो पल कभी बीते ,
जीवन तो निपट सूना
रस घट समी रीते ।
अस्तित्व की यह अनयक भीड़
अपनी कहा परतीत ?

सो गये सदर्भ
अब हूँ मैं लुटा-सा क्षण ,
जिसका कुछ नहीं हो अर्थ
ऐसी एन मैं उलझन ,
एक ऐसा स्नेह मैं
कोई न जिसका मीत ।

मेरा प्यार

तुम से सुन्दर तो कविता का कोई विषय नहीं

मुझ से सच है गीत

तुम्हारा गाया नहीं गया ,

बात नहीं की किन्तु

प्रीत को मैंने सहज जिया ,

शोर मचाकर कह दे ऐसा मेरा प्रणय नहीं ।

सहज प्यार से मैंने

पाया प्यार तुम्हारा है ,

अपरिमेय यह प्यार

न इसका बूल किनारा है ,

सहज प्यार से गहरा विस्तृत कोई निसय नहीं ।

इसी प्यार के धूँते

मैंने सबको प्यार किया ,

इसी प्यार से सजकर

सुन्दर यह ससार पिया ,

मिटा सक यह प्यार कि ऐसा कोई प्रलय नहीं ।

प्रश्न-उत्तर

प्रश्न तुम्हारा कौन मेरा भीत
उत्तर मेरा कौन नहीं है ?

मैंने सबकी कथा सुनी है
भरसक सबकी व्यथा सुनी है
बहने को तो हैं ये मेरे गीत
सच मे सब की बात बड़ी है ।

कभी किसी को नहीं बिसारा
चाहे कर ही गया किनारा ,
पूव सजोई हर मन की प्रीत
तब मन मे रसधार बही है ।

इतनी प्रीत निभाई कैसे ?
इतनी पीर बसाई कैसे ?
सच तो यह है गया इसी से जीत
मैंने गीत की बाह गही है ।

सब की बात

कहने को तो इन गीतों में मेरे मन की बात है
किन्तु जमाने भर का इन में सोया भ्रमवाद है ।

मैंने तुमको प्यार किया है जैसे दुनिया करती है,
अपने दिल को हार दिया है जैसे दुनिया करती है,
लगन को तो प्रेम कहानी लगती है केवल मेरी
गुथी सभी की प्रेम कहानी इन गीतों के साथ है ।

मैंने भी सपने किये हैं जुल्म सहे ॥ याप सहे
अरमानों के मेले मन में सिसक कर लये रहूँ,
किन्तु अकेले मुझ से ही तो जुल्म नहीं लड़ने आया
हर जीवन में कुछ पल आई यह अधियारी रात है ।

कदम अकेले नहीं राह पर चलने वाले हैं मेरे
हर मुकाम पर मेरे साथी बने हैं डाले डेरे,
कुछ थक कर सुस्ताते हैं पर चलने को आतुर हैं
मेरे मन में इनके मन में बसी एक ही बात है ।

कदम उठाना भर बाकी है दौर बदलने वाले हैं
जुल्मा से प्रतिकार सजाने पैर मचलने वाले हैं,
कौन रोक सकता है मुझको जीत सुनिश्चिन् है मेरी
मेरे इस महाप्रयाण में और सबको साथ है ।

प्रवासी मन

विसी ने प्रीत जो परसी
तुम्हारी याद लो सरसी ,
यह विजन भागन
यह प्रवासी मन ,
नयन में उमड़ा
प्रीत का लघु घन ,
हुए पल के चरण बोझिल
यो हर घड़ी तरसी ।

विछोह के क्षण

तुम्हारी याद का सस्पेंस
स्वयं सानिध्य से गहरा ।

तुम्हें पा जो हुआ उद्रेक
न पाकर ही गया व्यतिरेक ,
कि लगता कुछ नहीं चलता
ठिठक कर समय तक ठहरा ।

अब जब तुम नहीं हो पास
लीलती-सी जा रही है प्यास ,
अभावों का विकट सत्रास
उदासी दे रही पहरा ।

समर्पित

कर लो मुझे स्वीकार
मैं तुमको समर्पित हूँ ,
किंचित नहीं इन्कार
तुम्हें समवेत अर्पित हूँ ।

तुम्हारे रूप की गरिमा
अहम् के तोड़ती भालम्ब ,
प्रीत का यह प्रबल पारावार
मैं जिस में विसर्जित हूँ ।

तुम्हारे प्यार के सस्पर्श
परिधिया कौनसी अब शेष ?
इतना प्यार का विस्तार
छू अस्तित्व विस्मृत ॥ ।

तुम्हारी प्रीत में फलती
सभी की प्रीत चिर सम्यक्
सभी के प्यार का भागी
असीमित और विस्तृत हूँ ।

निराश मन

समय घरा यह चलती रहती
गगन वायु भी सदा मचलती ,
इन दोनों के बीच अवस्थित
मेरी दुनिया रोज बदलती ।

इन चरणा की गति मे मैंने
घरती के चरणों को बाधा ,
चीर गगन की इस छाती को
मैंने सपनों तक को साधा ।

एक लिये विश्वास हृदय मे
मैंने साधे स्वप्न निलय मे
हृद होती पर इतजार की
भार निराशा का ले कब तक विश्वासों की नाव बहलती ।

टूट गई आशाएं दिन की
किया समपण साहस ने भी ,
आज समय की लहरें मुझको
इधर पटकती उधर पटकती ।

मैं गिनता रहता लहरों को
बीते दिन आते प्रहरों को ।
बीच बीच मुस्का उठता हूँ
एक समय इन लहरों पर थी इच्छा की आनाएँ चलती ।

यत सपनों की पान साधकर
चलू समय का उदधि चीरकर ,
पार लगा दू तूफानों को
छान विमत नैया के बल पर ।

घोठ काट यौवन रह जाता
उमग उमग साहस कह जाता ,
मैं इतरा कर उठ जाता हूँ
बिन्तु तभी मन के कोने से धीरे से आवाज निकलती ।

सान्त्वना

किसको किसका रहा सहारा ?

अभी साँझ हुई साथ के पछी अपनी राह गये सब
अभी शेष है रात अघेरी जाने इतनी रात कटे कब ?
इसी तरह अनमना हुआ तो कैसे इतनी राह कटेगी ?
औरो का सम्बल ले करके
कौन पा सका बोल किनारा ?

एक रात की बात साथ की एक प्रात का साथ वसेरा
होने को इतना ही क्या कम और हुआ क्या तेरा मेरा ,
किंतु बता क्या दोष शिनायत एक साँझ को हट चले यदि
एक प्रात का एक रात का
यह छोटा सबब हमारा ।

सही बात है तुझे सतायेंगी बातें उन प्रिय प्रातों की
एक एक क्षण एक एक पल याद दिलायेंगे रातों की ,
किंतु बता क्या दोष यही कम याद रह गई पास किसी के ?
साथ सभी ने किया यहा
पर किसने किसको नहीं विसारा ?

अद्वैत

आओ
तुम्हें
अपनी बाहो मे बाध
तुम्हारे रस को
मेरी रग रग मे
रोम रोम मे बहा लू ।

सारी स्रष्टि से
अलग कर
मैं तुम्हे पालू
अपने मे समा लू ,
मेरा प्यासा मन
इस तरह भरा हो ,
सूखता जीवन का चमन
हरा हरा हो ।

तुम्हारा प्यार

मुझे तुम से प्यार है
और बहुत प्रखर है ,
यद्यपि वह मौन है
नहीं तनिक मुखर है ।

मेरी और उपलब्धिया
अवरोधो को तोड़
मुखर होती हैं ,
क्योंकि मैंने उन्हें औरों से पाया है
दूसरों के साथ भोगी है ।

तुम्हारा प्यार एकान्त मेरा है
इसलिए वह नहीं लेख मुखर ,
और क्योंकि उसे मैं अकेला भोगता हूँ
बाँटता नहीं
इसलिए वह
बहुत बहुत प्रखर ।

बेटे बेटिया

मेरी ये बेटिया
घर के आगन में लगे पनपते पेड़ हैं,
इन से घर भरा भरा रहता है,
मेरा यह आगन सूखता नहीं
हरा हरा रहता है,
एक दिन ये किसी और आगन
में जायेंगी,
फिर भी इनकी डाल पर पले
पछी की वाणी
मेरा घर आगन
सरसावगी ।

मेरे ये बेटे
विकसते हुए पछी हैं,
जो पल सवारते हैं
उड़ नहीं सकत इसलिए
बाहर को विवश निहारते हैं,
ज्यो ज्यो ये पल शक्तिमान होंगे
ये आगन से कटेंगे,
अलग अलग दिशाओं में बढ़ेंगे ।

अलगाव

तुमने फिर पूछा
कब आ रहे हो ?
मैं तुम से अलग
था ही कब
जो या बुला रहे हो ।

लेकिन ठीक है
तुम भरे पास मे हो
सास सास मे हो
आस उच्छ्वास मे हो ,
पर मैं तुम्हारे पास थोड़े या
तुम्हारे पास तो तुम्हारा रूप या
व्यस्तता थी
यौवन की अलमस्ती थी ,
य तो मैंने तुम्हे पुकार लिया
इसलिए तुम्हें याद आया
कि मैं भी कुछ हूँ
और तुम से दूर हूँ ।

परीक्षा

आने की घड़ी
ज्या ज्यो आ रही है पास ,
तुम से दूर हूँ
हो गया तीव्र यह आभास ।

मन तुम्हारे पास आने को अधिक आकुल
जिहे सायास रोका था तृष्णा वह हो गई विह्वल ,
कसता जा रहा है
मधनो का यह मधुर अहसास ।

मैं झूठ नहीं बोलूंगा
मन में पाप नहीं धोलूंगा
भर्यादा का दण और नहीं खोलूंगा ,
मन में उमड़ते आवेग
धुमड़ते जा रहे सवेग ,
कह रहे यह बात
धीरे से मैं तुम्हें ढूंगा
तुम्हें ढूंगा ।

तुम्हारी याद
कटीले काटा सी डण आई है
उस से मीने नजात नहीं पाई है ,
तुम्हें बाहुओं में बाध
तृप्ति लगा ।

विजोग

तुम नहीं हो पास
सब उदास उदास ,
अन बुझी यह प्यास
फैलता ही जा रहा सन्नास ,
अजब-सा आभास
मुरझता सा हास ।

भारी हो रहे हैं श्वास
बस एक ही अहसास ,
तुम नहीं हो पास ।

तुम नहीं आये

मैंने तुम्हे भेजा निमंत्रण
पर तुम नहीं आये ।

तुम नहीं आये कि यह सुबह सूनी शाम है सूनी
हृदय में अभावों की कसक भव हो गई दूनी ,
बड़े यो याद के साथे ।

तुम नहीं आये प्यासता ही जा रहा है मन
भले ये मेघ बरसों सरसा पर कहा सावन ,
फिर फिर मेघ घिर आय ।

तुम्हारे रूप के बचस्व को स्वीकार करता हूँ
तुम्हारे प्यार से मैं जिंदगी में प्यार भरता हूँ ,
वह बात कहने में शर्म क्यों आये ?

मैं तुम्हारा हूँ पूरी तरह से मानता हूँ
मैं तुम्हें समवेत मन से मागता हूँ
तो तुम्हें ये सत्य बतलाए ।

स्थिति बोध

योजनो दूर से
आ रहा है यह तुम्हारा स्वर ,
प्यार के अतिरेक से
जी गया है भर ।

दूसरे ही क्षण
दूरियों का यह विक्स महसास ,
बहुत जल्दी आ रहा हूँ
प्रिय तुम्हारे पास ।

मेरा घर

यादों में घिरा आता सुहाना गेह ।
है नजर आता मुझे वह
सीढियों पर बन्द होता द्वार ,
लहरता जिस में सुरक्षा का
भरा निस्सीम पारावार ।
जिन्दगी चुकती मगर चुकता नहीं जो गेह ।

वह सहन के पास का कमरा
भर बाह में लेता जहाँ आगम ,
प्रीत की निधूम जलती बर्तिका
आठों पहर निष्काम ।
सब तपिश चुकती बरसता प्यार का जब मेह ।

सुन रहा हूँ खोलने को
द्वार आती पास वह आहट ,
समझ आठों पर किया करती
मुझे सकेत नित जो मुस्कराहट ।
पुलक की पावन बही गया नहायी देह ।

बर रहा महसूस मिलती
जो सहज में प्रीत नित अभिनव ।
प्यार जो जीता सदा मैं
पर नहीं करता कभी अनुभव ।
पूणत देता मुझे जो अघर का मधु स्नेह ।

धरती का चाद

। ।

वो धरा के चाद का
नम मे हुआ लो अवतरण ।

जो लज्जिले नयन अब तक साज से फुरते
नापते हैं अब गगन की परिधिया ,
सिमटने थे अग अब तक सकुच बाहो म
बाहुओं मे बाध लेंग आधिया ,
रूप से अभिभूत विस्मित सब दिशाए हैं
नमित हो नक्षत्र नभ के चूमते नाजुब चरण ।

कल्पना मे तारवो से सेज सजती थी
सत्य नम की सेज सज आई ,
छंद मे अब तक बताया चाद था जिसको
ली जवानी ने गगन मे झलस अगड़ाई ,
लो मिलन की रात नभ मे सज गई है
सज गय हैं नव सृजन के उपकरण ।

सजन के भीठे प्रहर मे भीत की रामे
शपथ है नही कोई गाय ,
बैल-तीना ने बहाई प्रेम की गंगा
शपथ है उस मे न कोई जहर फलाये ,
इस धरा के चाद का यह मिलन हो चिर शाश्वत
छें बलाए चाद तारे और अरुण ।

भूले बिसरे गीत

कभी के भूले बिसरे गीत
याद आते हैं मुझको आज ।

पुलक की भोली किलकारी
किलकमय शैशव का ससार ,
नयन में चमकी चिनगारी
अकित विस्मय का जो आगार ।
चेहरे याद नहीं आते
हृदय में गूँज रही आवाज ।

जवानी की वह भीठी भूल
चाह को प्यार समझ डाला ,
कसक के उमरे इतने झूल
आस को सार समझ पाला ।
प्यार की तृष्णा से आविष्ट
उठाये मैंने जिनके नाख ।

गीत की याद सहेजी है
गीत की कड़ियो में पीकर ,
सहरती मेरे अतस में
दद की लड़ियाँ मैं पीकर ।
जगत के मन को लेता मोह
मस्त गीतों का यह आदाज ।

विश्वास का सबल

क्योंकि मेरे सामने हरदम किनारा
इसलिए भुझवो न भय भङ्गधार ।
सागर मे उठे यदि ज्वार तो इस मे नई क्या बात है
भङ्गा का प्रभजन का उदधि से तो पुराना साथ है ,
भङ्गा भी प्रभजन भी मयानक ज्वार घायेंगे
चलने के बहुत पहले इन्ह मैं कर चुका स्वीकार ।

मतलब क्या शिकायत से अगर हो दूर ही मजिल
मजिल तब पहुचने मे बब थी राह की मुश्किल ,
कोई राह ऐसी भी जहा मुश्किल नहीं होनी
मिटना क्षत मिलने की अगर तो भी नहीं इन्कार ।

सी थी साथ रहने की शपथ वो छोड़ दें तो क्या
मे तूफान ही ता है अगर रुख माड दें तो क्या ?
लगर खोलने तब ही शपथ की बात का मतलब
उसक बाद जाने किस तरफ को ले चले पतवार ?

साथी छोड ही दें टूट ही जाये न क्यो पतवार
जिनका भी रहा विश्वास निकले व्यथ वे भ्राधार ,
मैं असहाय बेवस फिर अकेला हो गया फिर भी ।
एक भ्रमिण विश्वास है पास पारावार ।

जन्म दिन पर

बगामोग यय
इन्हें मुठे भोगा
या मैं नहीं
कीन चीरु ?

अधिर तो दामन
मैं प्रयाग ही जिय
बहुत छोटे हैं
जिन्हें जीन के प्रयाग
छोड़ बहुत सिये ।

जा प्रयाग जिय
य यय
मेरे सपने तो नहीं ,
जिन्हें मैं नियोजित किया हूँ
यस सपने तो नहीं ।

रादम तो किसी भीर व है
जो मुझ से आकाश ही छुड़ गय
इनके मोक्ष से
मेरे सफल मेरे विद्वान
कुछ कुछ
कुछ कुछ गये ।

अधरे मे मिली ये सीढ़िया
बिना देखे
जिन पर चढ़ा हूँ ,
व्यथता का एक घना डेर
जो परो के तले

अनायास जमता चला गया
पाता हूँ उस पर आज खड़ा हूँ ।

वास्तव मे
यह मेरी उम्र नहीं है
किसी और की उम्र मुझ को लगी है,
मेरी उम्र तो
होगी कोई तीन चार वष
मेरे अपने तीन चार आसू
मेरे अपने भोगे
तीन चार हप्
थोड़े से सपष ।

अस्वीकारी से

मैंने कहा मेरी बात सुनो
तुमने कहा झूठ है ,
क्या झूठ है बात तो तुमने सुनी ही नहीं
उसकी सत्यता गुनी ही नहीं ,
नहीं सुनोगे
नहीं गुनोगे ।
ऐसा नहीं है कि सुनलोगे तो
मानना ही पड़ेगा ,
उसे अस्वीकारने के लिए भी
जानना ही पड़ेगा ।
मानो मत जानो तो सही
असत्य को पहिचानो तो सही ,
घटनाओं के बनाये गये
ये अखबारी क्रम ,
सत्य की पहचान देने का
उत्पन्न करते भ्रम ।
सतह पर दूबते रह
गहराइया पहचानने की बात
आवरण के पष्ठ से सब जानने की भाति ।
मैं नहीं कहता
कि जो मैंने जाना वही सत्य है ।
पर उतनी बात तो है ही
उस में जानने लायक अवश्य कुछ तथ्य है ।
सत्य तो सान्निध्य से
ही उभरता है ,
घरना सत्य क्या है
मात्र जड़ता है !

आत्मबोध

अपने आपको पहचानना
बहुत कठिन बात ,
जो आप हैं
वह जानना
बहुत कठिन बात ।

बुद्धि का पैना
नुकीला अस्त्र
हर बात को औचित्य का
पहना गया सुन्दर सुहाना वस्त्र ,
सत्य को निवस्त्र करके
जानना बहुत कठिन बात ।

बहुत निडर होते
जिन्दगी के तथ्य ,
अपनी जरूरत के
लिए मुश्किल नहीं पर
ढाल लेना कथ्य ,
कथ्य और तथ्य को सत्य के परिप्रक्ष्य में
ढालना बहुत कठिन बात ।

विराट का बोझ

मैं अपने को विराट बनने को
विचारो का सम्राट बनने को
छोटी बात नहीं कहता ,
मोटी बातों की मोटी चादर
सदा ओढ़े रहता ,
इन विराट बातों ने
मेरे छोटे मन को
भार से आक्रांत कर दिया है ,
सहजता को
मौत से भर दिया है ।
युग कोई क्षणों से घरे जी सका है ?
बिना किसी पान के
सागर कोई पी सका है ।
मैं भी तो छोटी छोटी बातें जीता ॥
फिर उनसे अलग रहने का आग्रह क्या ?
जो भोगा जा सकता है
उसका शब्दों से अपरिग्रह क्यों ?

मैं रिक्त हूँ

राह में चलते चलते

मैंने

बनायाप्त ही

मन में भर लिए थे

कुछ आसूँ कुछ मुस्कानें

और प्रतिबद्धता का सतही धोष ।

इन्हीं को मैं देता रहा

भलग भलग परिवेश ,

कभी उत्साह की मुस्कानें

कभी सिसवता हुआ वलेश ।

पर मन में बीज-से पड़कर

न ये आसूँ पनपे

न ये मुस्कानें खिली ,

राह में बटोरा गया दद

मेहमान की तरह आया

आखिर कब तक ठहरता ?

ययास्त्यति वालो से

विदशताग्रो से धिरा नही हरगिज रहूगा
जो सोचली है बात बल की
मैं उसी बल को यहा लाकर रहूगा ।

बया कहा सच है आज ही
जो कल गया वह आज ही सा था
इसलिए जो आयेगा कल आज-सा होगा ,
भगर ऐसा कोई बल है [या आज है]
तो वह तुम्हारा है मेरा नहीं है ,
जिंदगी है एक उमरता उत्स
अधेरे का सजित घेरा नही है ।

यह तुम्हारी चाह है
तुम्हारे आज-सा कल हो ,
क्योंकि इस आज को तुम
कुडली मारे नाग-से घेरे हुए हो ,
फन की छाह से आवृत कर
अपना जहर दे
टेरे हुए हो ।

तुम्ह डर है कि
कही ये देख लेगा कल ,
तो टूट जायेगा
अहर का छल ,
जिसे एक लम्बी भयानक रात
तुमने कर दिया
वह पल ,
बल के तेज से सहज ही
आयेगा गल गल ।

क्या हुआ यदि आज
मेरा कल नहीं साकार दिखता ,
धुपलाया हुआ है कुछ
पूरा नहीं आकार दिखता ,
वह कुछ दूर है
उसे कुछ निवट आने दो ,
प्रयासों से उसे कुछ निखर जाने दो ।

वही कल वा सत्य तुम्हारा
मर रहा है आज ,
लो सुनो
साकार होते हुए
उस फल की आवाज !

नियोजित

लगातार चना
मेरी नियति है
एक आदत है
वियशता है ,
चलना एक शिव-जा है
जिनना में चलता हूँ
उतना ही कसता है ।

पहले मैं चलता था
गली - गली
डगर - डगर
गाव - गाव
नगर - नगर ,
जहा देखता ठडी छाव
सुस्ताता था ,
कही ऊन उठता था
तो मस्ती मे
गुनगुनाता था ,
रास्ते मे आते थे अवरोध
उनसे जूझता था
नये रास्ते बूझता था ,
तब
मेरा चलना था
मेरी अपनी गति से
न कि नियति से ।

घौर अब
मैंने अपने लिए

रेल की पटरिया डाल ली हैं,
सभी रास्तों से कटकर
सभी मुश्किलों में हटकर
मैं एक रास्ते से लग गया हूँ ।

यहाँ सब कुछ सुनिश्चित है
चलने और ठहरने का समय
विश्राम के स्थल
और गतव्य
स्थिर मतव्य
जाना पहिचाना भविष्य,
रास्ते में कोई हेर फेर नहीं
जल्दी नहीं देर नहीं
नहीं मैं मन से नहीं
किसी और के दिल सिगनल से
चलता हूँ ठहरता हूँ,
किसी तरह से सुलग गया हूँ
इसलिए जलता हूँ ।

मे—फटा हुआ पैउ

मे फटा हुआ पैउ नहीं
पड़ या फटा हुआ तना हूँ,
आकार म चारे पड़ हो सतना हूँ ।

पड़ तो किसी तरह से
बाजिस बड़ा हो सक्ता है
उसके जमीन म अगद - से पाव गड़े हैं
इतनिए साहस से बड़ा हो सक्ता है ।

तना तो फटा है
उसे और भी फटना है
अभी भले बड़ा हो
आखिर तो उसे घटना है ।

जा जमीन से उगड़ जाये
अपने बोझ से जकड़ जाये
वह आशावादी को खुनीतिया
देगा कैसे ?
हो सक्ता है जी ले जैसे तैसे ।

गतव्य

सशया के पार मुझको
दीखता गतव्य ,
अभी तो पार कर पाया थोड़े बहुत
प्रारम्भ के कुछ मोड़ ,
अभी तो क्षेप है काफी लगानी
मुश्किला से होड ।

इस मोड़ पर भावर मुझे
सशया ने घेर डाला है ,
सकल थोड़े हिचकिचाये हैं
प्ररणाभा का हुमा धूमिल उजाला है ।

मुश्किलों पर जीत मेरी
बिर सुनिश्चित है ,
सकल मेरे दिव्य
लक्ष्य मेरा भव्य ।

सकल की ये रक्तिम गिराए
उपलब्धिया के पूव का आभास ,
सघप की बिर ज्योति से
प्रभासित हो गया भवितव्य ।

अनचाहा श्रम

मेरे चेहरे पर अनचाह
श्रम ने अपने छोड़ दिये हैं बिह ।

जैसे सागर का उमड़ता ज्वार
किनारा पर बरता बार ,
घोर बिगना किनारे
होते हैं उस भार का
प्रबल सहार
घोर उनका चेहरा घुनता नहीं
बटता है !

आत्म स्वीकृति

जो सघष जिये नहीं जाते
सिफ सोचे जाते है
वे अपना फल कहा पाते है ?

उत्तको सोचना ही वृथा है
पर सोचना एक प्रथा है
मैं उस प्रथा पर चलता हूँ
समझता हूँ रात दिन गलता हूँ
पर मैं थक पाया नहीं हूँ,
जहाँ पर था
वही का वही हूँ ।

अनुत्तरित प्रश्न

वात उठती तो है
पर निमनी नहीं
यधे यधे प्रश्न करता है मा
पर रहते हैं अनुत्तरित,
रात पिरती तो है
पर घटती नहीं ।

अनुत्तरित प्रश्न
काटा - से चुभ जाते हैं
निपलते ही नहीं,
अजब मेघमाला है
उमड़ती तो है
पर छटती नहीं ।

सरासना चाहता हूँ
किसी तरह काटे निकलें ता !
पर विवेक का नदतर
उलझन भरा,
जिस से पीर बढ़ती तो है
घटती नहीं ।

अनबढे चरण

कोल्ह के बँल - सा
मेँ तीव्र पर बराबर घूमता हूँ,
बढ़ रहा हूँ
सोच करके घूमता हूँ,
चलना भले हो
किन्तु यह बढ़ना नहीं है,
इस तरह से
सिमिट चरणा मे कही आती मही है !
यह चलना,
कोई प्रयास नहीं आदत है
या नि विवशता है,
जिस मे तिल ही नहीं
चलने वाला भी पिसता है ।

रक्त और उसूल

मेरे मित्र

तुम बहुत मले हा

मन मे बहुत ही उजले हो ,

बात करते हो रंगो म लीखते दूर सह की

जो मुम्हें व मुम्हे

अनायास बिना मागे बिना भागे

विरामत मे मिल गया है

जिस क मिलने मे

तुम्हारा मन तुम्हारा सन

तुम्हारा जीवन

सब कुछ मुझ से एह तरह से जुड गया है ,

सिल गया है ,

यहा तप तो ठीक है

पड गई जो लीक है

उस लीक पर चलना ही पडेगा

मोम जब सुलगा है

तो उसे गलना ही पडेगा ।

पर मेरे मित्र बात है यह

कि कुछ उसूल हैं

जो मुम्हे अनायास ही नही मिले

इन उसूलो को मैंने परखा है

उनको मैंने भोगा है

इनकी भित्ति पर मैंने सपनो को

सवारा है सजोया है ,

सही है किसी और ने इनका बीज

मेरे मन मे बोया है ,

पर इह मैंने

अपना रक्त से धोया है ,
 ये भी मेरे अपने हैं
 मेरे वतमान हैं
 कल के सपने हैं ,
 जो अनायास ही मिल गया
 वह मिल जाने से
 यदि सत्य है
 तो फिर ये उसूल भी
 तो अपने हैं ,
 फिर उन्हें झूठ कह दू कैसे ।

यह जो खून है
 जिसकी पावनता की बात सुन कहते हो ,
 मेरे खून का पी लेना चाहें
 महज इसलिए कि वह समझना है कि मेरा खून मीठा है
 और मैं बमजोर हूँ ,
 और मेरे उसूल
 उसे भावर रोके ,
 यह कह कर कि यह झूठ है
 कि मेरा खून मीठा है
 और खून की खून चूसने से
 टोके ,
 तब बताओ क्या करूँ ?
 यह खून भी अपना है
 यह उसूल भी अपना है
 अब किस रोकूँ किसे टोकूँ ?

यह सच है कि उसूल एक उलझन है
 खून एक फार्मूला है
 एक सरल सुलझन है ,
 जिस में तपिष्ठा है तडपन है

एक सहज प्रवाह है
 एक भीठी घड़ना है ,
 घोर जिसे जाना नहीं
 सिर्फ भाग जाता है ,
 पर घून जब सड़ता है
 तो तरागा भी जाता है ,
 यह दूसरी बात है
 कि तुम समझे
 उस में अभी भी जीवन का उत्स है ,
 उसे तरागा नहीं
 जाना चाहिए ,
 प्रमी तो मैं भी यह मानता हूँ ,
 भेद है तो स्थिति का ही न ?
 पर उमूलन घून घून को
 तराशता तो है ही ।

इसलिए उलझन हो तो हो
 मैं घून के नाम पर
 घून से घून का घोषण नहीं होने दूंगा ,
 अपनी हसी बनाने के लिए
 किसी को मेरे ही घून के आसू की लड़ें
 नहीं पिरोने दूंगा
 मेरे घून के आसुओं से
 किसी को घून के नाम पर
 अपना आगल नहीं घोने दूंगा ।

घून तो बिना मागे मिला है मुझे
 उमूल तो मेरे अपने जाये हैं ,
 वे मेरे रहे हैं आगे भी रहेंगे
 मेरे साथ साथ सब कुछ सहेंगे
 हा यह मेरा घून

जो मेरे खून ने मुझे दिया है
 उसी खून पर गिरेगा
 उसी खून में जज्ब होगा ,
 उसे मैं कहा ले जाऊंगा ,
 उसे यही पाया है
 यही सो पाऊंगा ।

इस खून को साथक करेंगे
 मेरे ये उसूल ,
 जिन उसूलों को
 मेरे खून ने पाला है पोसा है ,
 यह झूठ है
 कि मेरे खून व मेरे उसूलों में
 कोई भेद है ,
 इसी खून की कशिश ने
 पैदा किये हैं ये उसूल ,
 क्या हुआ यदि खून से न आकर
 खुले बातायन व अविभाज्य सपीर से
 मेरे मन में समाये हो ये उसूल ,
 तुम भी तो मिन इसी तरह से
 आये हो ,
 आकर मन में समाये हो
 सही है तुम किसी और क जाये हो ,
 हमारे खून का स्रोत अलग हुआ तो क्या
 पर इसीलिए क्या तुम पराये हो ,
 चाहे खून हो चाहे उसूल
 मिलते तो धीरो से ही हैं
 पर इस से क्या होता है ,
 बात तो यह है
 कि वे अपने हैं या नहीं
 वे गलत हैं या सही ।

मुझे भी मला सगता है
 तुम्हारा यह रोप
 यह गहरा आक्रोश,
 ऐसा नहीं है
 कि इस तडपन को मैंने नहीं जाना है,
 मैंने भी उसे ठीक इन्हीं सदमों में पहचाना है,
 पर सच मानो मित्र
 तुम्हारी जैसी ही तडपन से
 जामे
 उसूलों के यह उनचास पवन,
 जिसे न कोई रोक सका है
 यह है वही सावन,
 जो निश्चय ही भरसेगा
 ढरो मत
 इसी से हमारा खून सुवासित होगा
 मरसेगा ।

निरर्थक

मैं एक बीहड़ पवत
स्थिर बठोर
सृजन हीन ,
कमी कमी
मूसलावार वर्षा
भाती है ,
मुझ पर
शीतल
जल का ढेर का ढेर
बरसाती है ,
मुझ में पर
कुछ नहीं
समाहित होता ,
जल की धार
अपनी याद के
छोड़ती कुछ निशान ,
नहाती मेरी देह
पर नहीं प्राण ,
कमी कमी
हरियाली
घाताघात में उड़कर
थक वर मुझ पर
अनायास आकर टिकती है
गाढ़ना चाहती है अपने पाव ,
अपने लिए सिरजना चाहती है ठंडी छाव ,
उसी छाव
ना ठुक्का

मुझ पर ढसता ,
वरना
सदियों से
सगता है
मैं रहा जलता ।

निस्सीम

मेरे आगन में
एक बगिया सहज ही उग आई है ,
मैं उसका प्रहरी ,
उसके चारों ओर फैलकर
सीमा बनाना चाहता हूँ गहरी ।

चाहता हूँ उसकी बयारी बयारी
छोटी - छोटी हर एक डारी
जसे मैं चाहूँ सजे ,
कली कली बी बटख का स्वर
मैं जिस राग में चाहूँ
उसी में बजे ,
एक तरह से
मैं उसे समी ओर से काटकर
प्रसंग करने को तत्पर
प्रपनी ही मर्जी के रंग भरने को प्रातुर ।

पर
पनपती बगिया की जड़ें
फैलती हैं ,
अनकटी धरती के भीतर
सीमा को तोड़ ,
विवसती हुई डालिया
तोड़ कर प्रतिबन्ध
सहज ही लेती
मुक्त नये मोड़ ।

पराभव

एक वह वक्त था
जब मैं खुश रहता था ,
दुख अक्सर आते भी थे
तो उन्हें मुझ की छाह समझ
सहज ही मैं सहता था ,
मस्त दरिया की तरह बहता था ।

फिर एक वक्त आया
जब मैं उदास हो आया ,
अपनी तपिश शरीरों की तपिश का
शरीर अधिक गहरा हो चला साया ,
शरीरों के दुख का अपना बना
मैं जो था वह न रहा
तुम तुम शरीर तुम बन गया ।

शरीर आज
न तो मैं
उदास ,
न मुझ में वह मस्ती है
न मेरी हस्ती है ।

अपने सुख को चीह नहीं पाता
शरीरों के दुख को बीन नहीं पाता ,
मैं तटस्थ ॥
बहने को बस व्यस्त ॥
सच तो यह है
मैं हो रहा अस्त हूँ ।

तटस्थ

मेरे सामने है
पानी का लम्बा विस्तार
पर दिसता नहीं
उसे ढक लिया है
'स्टेटस्को' की तलछट ने,
जिस तलछट को
मैं मान बैठा हूँ अतिम सत्य
एक अपरिवर्तनीय यथाथ ।

मेरे पास
पचासन लगाकर
बैठे हैं मित्र,
बहुते हैं
किनारे पर बठकर
अपनी तलछट के माध्यम से
उन्होंने जान लिया है यथाथ
दूढ़ लिया है सत्य
ऐसा है उनका मध्य,
भार करते हैं
पुकारते हैं
मुझे अनवरत
धिकारते हैं,

मैं जानता ॥
यह तलछट बुरी है,
कौन नहीं जानता
कि यह तलछट रही
तो पानी भी सड़ेगा

इस तरह स्थिरना बहुत महंगा पड़ेगा ,
 तो फिर क्या किया जाय
 सिर्फ शोर
 अरे भाई
 शोर करने से नहीं हटती काई ,
 भले ही
 तुम तटस्थ रहकर
 पुकारा करो ,
 और मैं तटस्थ रह कर चुप रहूँ
 दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं ,
 तुम्हारे स्वर में तीव्रता है
 मेरा स्वर धीमा है
 इसका मुझे खेद नहीं ,
 खेद है तो यह
 कि मन की गुफा से टकरा कर
 लौट लौट
 रह जाती है आवाज ,
 जहाँ जहरत तो यह है कि सघर्षों के मदान में
 तुम्हारी और मेरी आवाज जुट ,
 उनके अद्भुत स्वरो से
 आलोकित हो
 वज्र उठे साज पर साज ।

अमूर्त

मन मे शबलो की एक भीड़ लगी ऐसी
कि एक भी शबल पहचानी नहीं जाती ,
मन में भावाजो का शोर जुटा ऐसा
कि एक भी भावाज जानी नहीं जाती ,
इस भीड़ मे भनायास हूव गया हू
इस शोर से कमी का ऊब गया हू ,
पर यह चक्रव्यूह ऐसा कि जिसका टूटना मुश्किल
यह ऐसा प्रवाह कि जिससे छूटना मुश्किल ।

अकेला

धरे आस पास
बहुत दूर है,
शोर के बीच
मैं अकेला हूँ,
ठीक वैसे ही जैसे
अनगिनत तारों के बीच अनछुआ चांद

बीता क्षण

अलग अलग बटे कटे
पल छिन मे जीता हू ,
एक बूद अभी
एक बूद वमी
मिल गई तो क्या
मैं निरा व्यासा हू रीता हू ,
तृप्ति का बोध
तनिक नहीं शेष ,
प्यास की कशिश
अब नहीं लेना ,
ऐसा लगता है
कि मैं छिन एक बीता हू ।

बड़ी बात जीता नहीं
तो बहू ही कहाँ ,
रहने को नहीं घर
तो रहू ही कहा !

घार ही नहीं बही
तो फिर बहू ही कहा ,
कहना और जीना
एक ही बात ,
जो जी नहीं पाता
सस बात को गहू ही कहाँ !

क्षमता

• मैं वह पेड़

जो बाहर तो पनपता है

आकाश को छूने के लिए तड़फता है ,

पर जिसकी जड़ें कमजोर हैं

झुकती जा रही है ,

जिस में जीवन का सत्व नहीं

न जीने की क्षमता ,

जितनी भी है

अदर ही अदर

सड़ती हुई सिमटा रही हैं ,

इस तरह से

आकाश छूएगा कैसे ,

अलग बात है

जी लेना जैसे तैसे ।

वैविध्य

मैंने पहली बार
नहीं कही यह बात
उसको ग़ीरो ने बहुत बार कहा है
फ़क़ इतना है
कि ग़ीरा से थोड़े अलग ढग से
मैंने उसे सहा है
बात वही होती है सत्य एक हाता है
पर फ़क़ यही है अलग अला स्थितिया में
तरह तरह से सब ने उसका भोगा है ।

अहसास

दद का अहसास
कहा नहीं जाता
जब तक सहा नहीं जाता ,
जैसे किनारे पर बैठकर प्रवाह में
बहा नहीं जाता ।

करना ही व्यय विचार
दद की उपलब्धि का ,
दद सहने में नहीं जब तक
हो सके प्रतिबद्धता ।

मिल गया जब दद
तो प्रयास का प्रश्न क्या ,
प्रतिबद्धता का दद ही ऐसा
कि एक बार मिले बाद
कहे बिना रहा नहीं जाता ।

दिग्भ्रात

सोचता तो बहुत हूँ
कि मैं कुछ करूँ,
जो करना चाहता ॥
उसके लिए
जल्दरी हो तो मरूँ ।

पर बात यह है
जो करने की कल्पना मन में बनाई थी
तत्साह से जो प्रल्पना मैंने रचाई थी,
सशयो से भर गई वह कल्पना
पदों से कुचल घूमिल हो चली वह प्रल्पना,
मविष्प का और कोई आकार जोड़ नहीं पाया
प्राज को मैं कल की ओर मोड़ नहीं पाया,
इस से बठा हूँ मैं विमूढ और दलभ
घूमिल हो चले हैं मोड़ घूमिल हो गये हैं पथ ।

सशय

कभी कभी मुझ को अपने पर सशय होता है
कल के सघर्षों से घबरा कर
मैं कल को भूल रहा हूँ यह भय होता है ।
होने को तो बहुत लोग हैं
जो कल की बात नहीं सोचा करते हैं
जो कुछ मिल जाना है आज उसे भोगा करते हैं
पर मेरी तो मुश्किल यह है
मैंने सोच लिया था कल यह है ।

यह भी ऐसा कल
कठिन जिसे भुता सजना है,
जागति को भी जो धावृत कर देता है
ऐसा मेरा कल का सपना है,
उस साधना में सचमुच अतिरेक हो गया
उस सपने में माना अब कुछ अतिरेक हो गया ।
जीवत बिना तु जो सपना होता है
वो एक लीक नहीं
उसके बढने का डग अपना होता है,
लगता तो है जैसे
मैं समझ न पाया
इस सपने को नये उभरते रंग
उसकी विविध भदाएँ उसका नये विकसिते डग,
उसके किसी एक डग से मन आश्वस्त नहीं है
यह निर्णय बहुत कठिन है वीन गलत है वीन सही है
इसलिए मेरे सघर्षों का क्षय होता है
पर कभी कभी मुझको अपने पर सशय होता है,
कल के सघर्षों से घबरा कर
मैं कल को भूल रहा हूँ यह भय हाता है ।

लक्ष्यहीन

तुम स्टेशन का प्लेटफार्म मत बनो
जिस में विचार व सक्लप यात्री की तरह
धतियाते हैं,
हिलते हुए रुमाल
पूछने हुए आगू
क्षणों में विदा कराते हैं ।

उस से देश तो देश
नगर नहीं बनता ,
और तो और
घर नहीं बनता ।

सुन्दरता

सुन्दरता
मेरे पास से निकली
जैसे मेघो मे
एक बिजली की धी ,
मैंने नहीं देखा
दिली अपने आप ,
मैंने नहीं खींची
अपने आप ही पड़ गई थी धाप ।

कथ्य और तथ्य

कथ्य और तथ्य
दोनों में अंतर है,
कथ्य है गगन
तो तथ्य है धरा,
कथ्य हवा में बोझो
पनपेगा नहीं जरा,
कथ्य जब तथ्य से मिना
सत्य तब उमरा निखरा संवरा ।

बदलना सहज नहीं

अपने आपको बदलना
सहज तो बात नहीं,
बदलने का अर्थ
यदि मन को बदलना हो कह !

मन कोई विषय दीवार तो नहीं
जिस पर जब चाहे
जो भी रंग लगा दें,
टूटी हुई खेल भी नहीं
कि जैसे तैयार
तोड़ मरोड़कर
चाहे जिस ढंग से सजा दें,
रीती हुई गिलास नहीं
इस में जो चाहें भर दें
गीली अनगढ़ी मिट्टी भी नहीं
जो चाहे रूप कर दें ।

बूद बूद रक्त का प्रवाह बना है
हर बूद में जिन्दगी का अर्थ बना है,
कितने ही स्रोतों से
जुटाये गये तत्त्व,
अनायास कैसे ही जाप नित्य,
इस लहू में लगातार जिन्दगी बहती है
तब नहीं बिकसी यह मन की कली है,
जो टूट तो सकती है
बदल नहीं सकती,
अपने स्रोत से अलग
अधिक चल नहीं सकती ।

असफल विद्रोह

विद्रोह की कसी हुई मुट्ठियाँ
मन के बंद द्वार
प्रहार और अधिक तीव्र प्रहार ।

भीतर नपुसक
भयभीत आक्रोश ,
आशकाग्रो से सन्नस्त
उत्साह की प्रतीक्षित लौ ,
शायद विद्रोह इस द्वार को खोलेगा ,
भीतर को समाहित करेगा
भीतर और बाहर
विद्रोह ही विद्रोह का स्वर बोलेगा ।

पर बाहर की ओर खुलने वाले मन के ये द्वार
कितने ही हो प्रहार
खुलते नहीं और अधिक जुड़ते ,
विद्रोह ही इस से टकरा
होते व्यर्थ मुड़ते ।

बातें

मिल बैठ कर लें बात
व्यस्तता के ये कसले पल
व्यग्रता के ये कटीले छल
थोड़ी देर उनका छूट जाये साथ ।

सोच का उत्कलन भरा सम - जाल
उत्तर नहीं
बस सवाल ही सवाल ,
यातो हैं सितारो से भरे यह रात
सपन बेमतलब जुटाते तिव्रता
रोज बढ़ती जा रही है रिक्तता ,
कुछ तो घटेंगे सगते हुए भाषात ।

अप्रयोजनीय

जिन्दगी

टूटी हुई माला

वि बिखरे पूस जिसके

हस में नहीं है प्रेम

न कोई तारतम्य

बस एवता का भ्रम ,

न कोई व्यवस्था है

यह कैसी भवभ्या है !

वह प्रयोजन

जो कि उसको एक करता था

एक क्षण व दूसरे क्षण की

दूरियों को सहज भरता था ,

प्रेम नहीं है

तुम मले कह दो जिन्दगी है

सरय में तो एक बस

घटना वही है ।

मतभेद

मतभेद
मतभेद नहीं विग्रह
विग्रह नहीं विच्छेद
मता से तो बटा जाता है
विग्रह से विच्छेद से कटा जाता है ।

मत है एक माघार
विच्छेद टूटता हुआ कगार ,
हम रह गये क्षेप
टूटते हुए कगार ,
न तो स्थिर बूल
न गतिमान धार ।

आकृतिया

भाषार

भाकार एक

भाकृतिया और अधिक भाकृतिया ,

कौनसी भाकृति

भाषार का सही रूप

कौन सी मात्र चमक

कौन प्रसन्न धूप ?

भाकृतियों की एक घनी भीड़

भाकार हुए झूठे ,

विश्वास के आलम्ब

लग रहा जैसे

भाषार सभी हटे ।

कुछ स्थितिया

उपेक्षा

जब मुहानी धूप चाही जाय
शीत की सहर नहीं
मिल जाय धधवती बयार ,
जब एकान्त चाहा जाय
तब भीड़ तो न जुटे
पर माहटों की चस पड़े कतार ।

प्रतीक्षारत को प्रतीक्षित न मिले
प्रनाचाहा मिले बार - बार ,
जिस पर न तो आपत्ति
न किया जा सके धाक्रोश
पर मन सुलगना रहे लगातार ।

अवकाश

व्यस्तता की घुटन
व्यवस्था की डकताहट ,
करीने से
सिलसिले बार चलती
जिन्दगी की थकान
भुभलाइट ।

इन से नजात मिले
मन की सतह पर आ तो गई है
पर जो मुखर नहीं हो पाई
वो बात मिले ।

जो करना है
 उसकी केहरिस्त लिए दिन न उगे
 जो न किया भा सबता उस से भारी
 सपना से बिहीन रात मिले
 न कुछ करना पड़े
 मन हो सूना भाकाश ,
 जो न चाहा जाय वह न हो
 ऐसा हो सब वाश !

व्यथता

बभरत
 पर दिशाहीन अम
 प्रथ रिक्त
 पर प्रथ का भ्रम ,
 मजिल की पहचान बिना
 गतिशीलता का क्रम ।

मैत्री

चाहो न जाय
 पर अनचाही नहीं ,
 न हो अनायास
 पर सायास भी नहीं ,
 न मिले तो अनपहचानी रते
 मिलने पर भी कहा जा सके
 यह वही यह वही ।

मजदूरी

धधा जैसे एक ज्वार
जो फैलता ही जा रहा
ऐसा मजबूत विस्तार ।

किनारे जो बभी साफ दिखते थे
मजबूत नहीं दिखते ,
जानकारी ज्ञान सब सज गये हैं हाट पर
रोज सुबह - शाम बिकने ।
मुक्त से देय लेकर मुक्तों
एक मस्मासुर जताने भा रहा है ,
मजबूत नहीं मालूम किचित्त
क्या हो रहा है हथ मेरा
घोर होने जा रहा है ?

बरखा

नम नयनों मे मेघ सपन
अजे हुए वजरा से,
घरती की घीवा में सज्जित
बरखा का गजरा रे ।

बरखा

नम नयनी मे मेघ सघन
बजे हुए बजरा से ,
घरती की ग्रीवा में सज्जित
बरखा का गजरा रे ।

बरसा देखी उसे भोग पाऊ ,
घरती की सुवास से
सुवासित समीर को
छपन म भर
नय ताजे गीत गाऊ ।

सान्निध्य

उधर देखो
मेघो का हाथ
पवत ने गहा
मेघ ठिठका
कुदृ रका रहा
पर उसे तो जाना था नहीं और
वरसने के लिए,
घरा का गात परसने के लिए
मूला प्रपात सरसने के लिए,
पवत - गरिमामय हो तो हो
उसके आलिगन में बधा नहीं
रहेगा वह,
उसका जहा होने का निश्चय है
वही रहेगा वह ।

अभियान

बहुत दिनों तक नहीं रहेंगे
ब-घन में इन्सान ,
आज जमाना बदल रहा है
अपने सभी विधान ।

धरती की किस्मत बदली है
नया जमाना आता है ,
धरती का हर कोना कोना
उसकी बात सुनाता है ।

धरती को घन - जोर जुल्म से
हमने मुक्त किया ,
ब-घर इस बत्सल घरा को
मोती - मुक्त किया ।

मानव के हाथों ने कल पर
छेड़े नये तराने ,
वागी बन इन्सान चला है
दुनिया नई बसाने ।

जो कल के साजों को छेड़े
वह कल का अधिकारी
जो दुनिया का रूप सकारे
उसकी दुनिया सारी ।

धरती ने करवट बदली है
भाग्य बदलने वाला है ,
धरती का मालिक होगा
जो धरती का रखवाना है ।

मुक्ति का स्वर्णिम सवेरा

उधर नम की अज्ञानी वीथियो में
पर पसारे उड़ रहा इंसान
भुक् रहे नक्षत्र
खुलते जा रहे हैं राज सारे चाद तारों के ,
उठ धरा से देखता हू
तो सहज दिव्यने
बाहुओं में बाह डाले
फँलते विस्तार
इस धरा के दो किनारों से ।

दूरिया इंसान की करती समपण
और इन ऊँचाइयों के
गवधारी हर शिखर का भुक् रहा मस्तक ,
चाद के और सूरज के
पहुँच प्राण में
उनके रहस्यों के कपाटों पर
दे रहा इंसान अब दस्तक ।

ज्ञान का वामन चला है
नापने को माज तीनों लोक
हर हृदय का घुल रहा भ्रजान
फँली घुप
जसे ज्ञान का आलोक ।

जानता है आज तो इंसान
अपने सब प्रयासों की
दिशाओं को ,
तोड़कर सताप की इन जड़ परिधियों को
विजित करता है

मनुष्य की परम्परा

युग धके धकी नही
मनुष्य की परम्परा ।

पिगल चली धरा भले विदीण हो गया निलय
धिरी घटा चनी प्रचण्ड आधिमा लिए प्रनय ,
निशा बिना प्रभात थी न साझ थी न रात थी
सष्टि ही रुकी - धकी मिटी दिशा यमा समय ।
सिमिट चला गगन भले
सिमिट चली वसु-धरा
मगर प्रनय नही सका मनुष्य को कभी हरा ।

वद के पुराण के विधान मे नही रुकी
शक्ति के समन्व भी कभी कही नही झुकी
मनुष्य की परम्परा रही सदा विरास की
भजिलें बनी भले न भजिलें मगर रुकी ।
राह धक गई भले
चरण कभी नही धके
रुकी मनुष्यता नही न जी मनुष्य का भरा ।

बाधकर गगन मनुष्य उड़ खला पमार पर
धीर वक्ष सिन्धु का बना खला नई डगर ,
मनुष्य के लिए नही समय न दूरिया रही
मनुष्य योजनी चला पलक - पलक पहर पहर ।
असाध्य को विजित किया
मनुष्य के प्रयास ने
खोदकर हूय रहस्य ने मनुष्य को धरा ।

मिदिया मनुष्य की व्यय हो सकें नही
विकास के लिए सहज शातिपूर्ण हो मही
पहलए विकास के मनुष्य ने बना दिया

शक्ति की समय ने बाह इस तरह गही ।

पहलूए विकास के
बिनाशकाय हो गय
पद दलित हुआ मनुष्य पद दलित हुई घरा ।

पयोधि से समय आज जल नहीं बहा रहा
रक्त से मनुष्य के जमीन को नहा रहा ,
अस्थियाँ मनुष्य की खाद हो रही यहा
मनुष्यता मिटा समय स्वर्ण को उगा रहा ।

सम्यता मनुष्य की
मिट चली भले मिट
रक्त की कसोटियाँ स्वर्ण को करें खरा ।

पर कभी नहीं सहा पाप को मनुष्य ने
डर कभी नहीं रहा धाप हो मनुष्य मे ,
नियति से लडा मनुष्य बावजूद हार के
राह पर बठा मनुष्य कष्ट को बिसार के ।

शक्ति से कभी कही
भुकी नहीं रुकी नहीं
जाति की विकास की मनुष्य की परम्परा ।

आज भी मनुष्य पर पयोधि रत्न बारता
वत्सला बसुंधरा दिखा रही उदारता ,
दे रहा दिनेश सेज मेघ नीर यो भरा
भेंट स्वर्ण ने किया थाल भातिया भरा ।

खेत से चुने हुए
चीर से ढकी हुई
मनुष्य के लिए सदा मनुष्य की बसुंधरा ।

इसलिए नहीं मनुष्य सृष्टि को सवारता
इसलिए नहीं मनुष्य सम्मता निखारता ,

मिट मनुष्य ने नहीं इसलिए रचा जगत
कि तुम उसे मिटा चलो वह रहे निहारता ।

घात्रुओं मनुष्य के
सावधान हो रहो
तुम नहीं रहे मनुष्य मनुष्य तो नहीं मरा ।

प्रश्न और प्रश्न

इतना नीर हिमालय पर है
फिर भी धरती प्यासी,
खिले चमन के चमन यहाँ पर
फिर भी गहन उदासी ।

करते नमन चाद और सूरज
फिर भी यहाँ अवेरा,
पल्ला झलता पवन साध
दम बैठ विवश सवेरा ।

श्रम का खेत हमारा मब तक
पड़ा हुआ है वजर,
हाथों क हल अभी तक भी
नहीं जुते धरती पर ।

किसके कारण नीर नदी का
जाता निपट प्रकार्य,
कौन चमन के चमन सूटकर
पूरे करता स्वार्य ।

कौन जलाने अपने दीपक
सबके दीप बुझाता
कौन बहारों को कदी कर
धरती को मकुलाता ?

किसने कुक् किया है
बोली धम का खेत हमारा,
किसके कारण इन हाथों का
छूटा बूत - किनारा ।

वीरो से वीरान नहीं है
घरती वीर प्रसवनी
बूझा मे आजाद बनानी
हमको अपनी पशनी ।

नीर सघे चमन मिले
हृद दीप उमर पाय ,
मुक्त बहारा का साया
घरती पर छा जाय ।

सुखर श्रम का नेत
हाथ के हल न रहें बैरार ,
पले घरा का भाग्य - विधायक
दुसानो का प्यार ।

अधूरे सपन

अभी तही साकार हुए हैं सपने
रुचे हुए हैं अभी रास्ते अपने ।

नही हथौड़ी मजबूरी का हुक्म उठाने पाये
नही कुदाली शोषण का नाज बढ़ाने पाये
नही भूख के हाथों यम का वमन ही लुट जाये
पूँजी के हाथों मेहनत का भाग्य नही लुट जाय
मेहनत का त्योहार दोष हैं सजने ।

मरे नाज के मोती से धरती का घानी घाचल
रहे दूध से भरी घरा की हरी छातिया छलछल
मानव के कंठा से मुखरित धरती गीत सुनाय
मा धरती की लज्जा जालिम नही लूटने पाय
शोषण के प्रवक्षोप दोष हैं मिटने ।

सृजन

एक नये निर्माण को फिर अपना अभियान हो

घरती नया सिंगार करे

सहरे सहरे सेत हरे

नये तरानो से आवाद सेत और सलिहान हा

बन पुर्जे खट खट बोलें

वैभव को घूघट खोलें

मेहनत क उमाद मे हर मजदूर किसान हो ।

हम दानी को भाय दें

और पवन को साध लें

बुदरत की मर्जी का मालिक मेहनत - कश इसान हो ।

घर खुशियो से भर जायें

सपने सभी सवर पायें

मुद्र और विश्वास मचाना और न मर आसान हो ।

सरक्षण

मेरे देश की पावन धरती पावन है प्राकाश
बीन हिना मकता है इसके फीलादी विद्वाम

यह विद्वाम कि सारे खेत हरे हो
यह विद्वाम कि सब खलिहान भरे हों
झारी झारी ब्यारी ब्यारी बिहस उठे वनहास

बल की जलिया चटखें मेरे बाग में
श्रम का मोरभ फँसे ठनकर आग में
दुश्मन मिटा न पाय सुखमय बल के ये आभास

सुना खुशी में ये चहवी किलकारिया
मस्ती से रत पहरी महकी सादिया
नही भीत से कूठिन हो यह जीवन वियास

उठो बचाने खेत और खलिहान हैं
उठो बचाने मेहनत के भगवान हैं
अपने बच्चों की मुस्कानें कायम रखनी हैं
यौवन की ये मस्त उड़ानें कायम रखनी हैं

कोई मेरी इस धरती पर आँच लगाये ना
मेरे इस उमुक्त गगन में बिप फैलाये ना
कूट न पाये दुश्मन अपने ये उन्नत बल्लास

मेरा देश

यह देश हमारा एक चमन
जिसकी हर बेसर क्यारी मे नाजो से बोया गया अमन ।

उ मुक्त पवन का अभिलाषी
उ मुक्त गगन इसको प्यारा ,
इसको न चाद सूरज से भय
इसको पुनीत तारा तारा ।
किस ओर सत्रा होना है
जिम ओर अघेरा कोना है ,
उ मुक्त गगन के पछी को
अधिकार दिशा का करे चयन ।

उज्ज्वल मविष्य का अवेदी
सबका मविष्य इसको प्यारा ,
इसका पावन सबकी सीमा
पावन हर घर आगन द्वारा ।
जो हर सीमा की मयादा
महीं तोडने आमादा ,
हर एक कली चटखें - फूले
या महक उठे हरेक सहन ।

काई न पवन को बाध सका
कोई न गगन को बाध सका ,
जो गरज गगन मे घिर आई
वह किसके रोके रुकी घटा ।
कोई न पवन मे विप धोले
किसे मालूम किधर होले ,
किस तिली कली का मन मुरमे
और कौन उजड़ जाये उपवन ।

अब और नहीं यह सम्भव है
कि अब चमन भ सोना हो ,
एक चमन में हसी खिले
और एक चमन में रोना ही ।

मवितव्य हमारा अलग नहीं
मरुघार किनारा अलग नहीं ,
सब वही बहार वही भाती
और वही सरसता है सावन ।

मुक्ति

लगर खोलो पास तान दो
पुन मुक्ति का नव - विहान हो ।

मेहनत को भवरुद्ध बनाने
तुमने ऐसी युक्ति लगाई ,
लगर कसकर घटा मुरशित
तुमन बन्दी मुक्ति बनाई ।

सहरो का डर बतलाने से
मुक्ति भुवी क्या ?
तूफानो से यह विकास की
नाव रुकी क्या ?
जो गडती है नये मान को ।

मेहनत का मस्तूल अभी तक
तना खड़ा है नहीं झुका है ,
जुल्मो का तूफान इसी से
सहम किनारे अभी रुका है ।

जुडे मुक्ति की बाहो से
मेहनत की बाहे ,
जुल्म झुके य
हा प्रशस्त वैभव की राहें ।
घरती का नूतन विधान हो ।

आशा

रात थोड़ी और लम्बी हो गई है
पर सुबह तो आयेगी ही ।

इस अंधेरे में सही यह राह मेरी खो गई है
पा निराशा पर निराशा चाह मेरी सो गई है
किंतु मेरी प्ररणाओं ने कभी रुकना न जाना
और मेरी साधनाओं ने कभी झुकना न जाना
बात थोड़ी और सुस्वप्न हो गई है
पर सुसम्पत् तो जायेगी ही ।

कि लम्बी रात होने का मुझे क्या मय जरा सा भी
बला से रुक गया हो बाद नभ में कुछ डरा सा ही
कि मेरी राह को तो प्रातः खुद ही खोजता होगा
निश्चय और अपना साथ खुद ही खोजता होगा
मोर की किरणें जरा भरमा गई हैं
पर गगन में छायेगी ही ।

न जाने पार कितने मोड़ कर आया
न जाने साथ कितने छोड़कर आया
कि जीवन भर जिहोने साथ रहने की शपथ ली थी
थोड़ी दूर पर ही हाथ उनको छोड़ते पाया
क्षितिज - सी जिन्दगी की राह मेरी है ।

कितनी बार पाया कि रुक गया हूँ मैं
झुक गया हूँ मैं कि विलकुल झुक गया हूँ मैं
कि सोचा था चुका इतना मुझे भव मोर क्या करना
कि तब ही खरण मचले मोर पाया उठ गया हूँ मैं
गगन - सी जिन्दगी की चाह मेरी है ।

सकल्प

राह ज्यो बढी मेरे होसले भी बढ चले

घबे अनेक ढल गइ अनेक चाद गल गये
ये सितारे बक्त के पाव मे मसल गये,
य समय की आधिया कुछ इस तरह चली यहा
जुटे हजार काफिले लुटे हजार काफिले ।

आस के निरास के राह मे मुकाम ये
मुश्किलो के हार के बहुत से विराम ये,
जुल्म दे रहे ये गश्त खूब घूमघाम से
मगर कुलन्दिया के गीत ओठ पर उमड चले ।

पाव म मेरे नही कोई विशेष बात है
मजिलो की राहियो की अलग यह जात है
हम कदम है जिदगी भविष्य मेरे साथ है
घूमने कदम मेरे तडफ रहे है फासले ।

मैं सुनहला प्रात होकर
भोर का तारा बनू नयो ?

क्या हुआ पहिले प्रहर मे
वादली ने यदि छुपाया
क्या हुआ यदि प्रथम पल मे
राह मे अवरोध आया ।

एक क्षण की तमिस्रा को निरुध्द करके
एक पल की हार को औचित्य करके
सुबह का विश्वास खोकर भाग्य का मारा बनू क्या ?

क्या हुआ पहले चरण पर
मिल गई यदि भूल मुझको ,
क्या हुआ यदि प्रथम पग पर
मिल गई हो भूल मुझको ।

एक लघु से दूत को अभिगाप करके
एक क्षण की भूल को विर पाप करके
नित नये पत का प्रणेता मैं क्या हारा बनू क्या ?

अकाल

रेत रेत रेत
रेत के धूसर
रेत के खेत,
मेरे देश की
धरती पर छाया है
विनाश का प्रेत ।

इस प्रेत से लड़ना जरूरी है
इसके बिना बात सब अधूरी है,
जरूरत हो बदल दी जाय धारा प्रवाहों की
और धरती सींच दी जाये,
सजन के सगं चालू हो
अभाव की आँखें भीच दी जायें,
कौन भी उलझिया जो पायी जा नहीं सकती
सकल की शक्तियाँ क्या ला नहीं सकती
सभी को सभी का प्राप्य मिल जाये
अगर हो यही अभिप्रेत ।

कवि तुलसी

राम धगर हो सवे धमर
तो तेरा ही सम्बन्ध धगर

बालू पर निसी रितेरे ने
मुछ रेगाए अगित नर नी ,
उपवरण सजाय धाड मे
मोही मी सामथी घर दी ।
बत्पना चिनरी तेरी थी जिसने य चित्र रचे सुंदर ।

महला से लाकर रघुपति बा
भापहिमा म भावास निया ,
राजा से रक् बना तुमने
जन के मन बा विदवास दिया ।
इन जीण भोंपडा मे पलकर हा गई राम की कथा धमर ।

डॉ जॉसेफ के आत्मघात पर

अनबोई घरती बोलने की
चाह लिए था जो ,
हाथ देखकर खाली
मन में आह लिए था जो ।

कुठाघा की गहन तमिज़ा
जिसे मिटानी थी ,
मुख धँसव की मा घरती पर
फसल उगानी थी ।

प्रज्ञानों के सूफानों से
झूझ रहा था जो ,
चिर प्रभाव की बठिन पहेली
झूझ रहा था जो ।

देख अभावों की छाया को
ज्ञान डर गया है
प्राज्ञ बठ अवरुद्ध बना
जॉसेफ मर गया है ।

सुप्त हारे पर नहीं पराजय
हम स्वीकारेंगे ,
हर मन में जो सुप्त पड़ा
प्रतिसोध उभारेंगे ।

सुप्त धँसव का सपन
अभी साकार बनाना है ,
पानि मुक्ति का दोष
अभी धाकार मजाना है ।

कवि तुलसी

राम अगर हो सके प्रमद
तो तेरा ही सम्बल पार

बालू पर बिसी चितेरे ने
कुछ रेखाए अंकित कर दी ,
उपकरण सजाये घोड़े में
घोड़ी सी सामग्री घर दी ।
कल्पना चितेरी तेरी थी जि

महला से लाकर रघुपति को
भोपड़िया में आवास दिया ,
राजा से रक बना तुमने
जन के मन का विश्वास दि
इन जीण भोपड़ा में पलकर हो गई

युद्ध खोरो से

शुक्रा सितिल का शीश दिशाए ग
ज्ञान मनुज का भाज गगन म उड
बातल - बरसा हाथ बाधकर हुक्म
उसके इमित इस घरकी के भाग्य ।

प्रलयबाहिनी धाराओ के पथ के प
भाज भाग्य के सब नियमा व इति
महली की दे धरण नगर के नग
धवि क लेल किय कितन ही विनि

जड बाचान हुए भूक ने प्राणो क
दिशा दिशा मे भाज कलो का कल
इस घरती पर एक नया सप्तार उ
एक नया ही भय मनुष्य के जीवन

दिल की नटकी घडवन की भी र
घोर नयन की दुभनी लो की फि
देह तरासे अग अग मे तई जिंद
चकित मोन भी भाज मनुज से ह

इसी ज्ञान के जाये अणु से मिलय
सहज धरा व प्राणन म तुम प्रल
जुलम रहे आबाद न्याय का नाम
प्यास तुम्हारी बुझे जमाना चाहे

जुटनों से भरपूर इरादे हम नहीं
हमको अपनी घरती मा से युगा

अनबोई है बहुत घरा
 हैं भूखे इतने देश ,
 अभी नहीं नि शेष हुए हैं
 इस धरती के क्लेश ।

जान पड़ा है सुप्त
 मना म धोर अचेरा है ,
 जड विश्वासो की कुठा का
 मन मे डेरा है ।

सघर्षों का मग वही यह
 यही नहीं रुक जाय ,
 नहीं ज्ञान की पावन गरिमा
 का मस्तक झुक जाय ।

तुमने मर कर घाज
 सभी को फिर ललकारा है ,
 सघर्षों की बुझती ली को
 पुन उभारा है ।

सौगंध तुम्हारी धम - युद्ध
 यह नहीं स्नेहा
 शोषण का परचम दूटेगा
 और जुल्म का शीश झुकेगा ।

स्व जॉर्जिज भारतीय कृषि व विज्ञान अनुसंधान संस्थान के
 अधिकारी थे, जिन्होंने फासी लगाकर आत्महत्या कर ली थी ।

युद्ध खोरो से

भुका क्षितिज का शीश दियाए गई कभी की हार
ज्ञान मनुज का आज गगन में उड़ना पक्ष पसार
बादल - बरसा हाथ बाधकर हुक्म बजाते हैं
उसके इमित इस धरती के भाग्य बनाते हैं ।

प्रलयवाहिनी धाराओं के पथ के पथ बदले
आज भाग्य के सब नियमों के इति और अथ बदले ,
महला को दे चरण नगर के नगर बदल डाले
छवि क खेल किये कितने ही विविध रूप डाले ।

जड़ वाचाल हुए मूक ने प्राणा को पाया
दिशा दिशा में आज कलो का कसरत है छाया
इस धरती पर एक नया ससार उभर आया ,
एक नया ही अर्थ मनुष्य के जीवन ने पाया ।

दिल की भटकी घटकन की भी तो लौटा लाये
और नयन की जुझती ली को फिर सुनना जाय ,
देह तराशे अग अग में नई जिंदगी आय
चकित मौन भी आज मनुज से हार हार जाय ।

इसी ज्ञान के जाये अणु से मिलय जलामोगे
सहज धरा क प्राप्ति में तुम प्रलय रचामोगे ,
जुलम रहे पावाद 'याय का नाम नहीं रह जाय
प्यास तुम्हारी बुझे जमाना चाहे सब बह जाय ।

जुल्मा से भरपूर इरादे हमे नहीं स्वीकार
हमको अपनी धरती मा से युगो युगों से प्यार ,
अपनी मेहनत से दुनिया का खून करें शृंगार
मेहनत करने वालों का ही यह सारा ससार ।

माओत्से तुंग से

हिमगिरी के उन्नत भस्तर पर
बर डाला है पदाघात ,
गंगा - सी पावन मलिला को
बर डाला है रक्त स्नात ।

इन खूनी कदमों को रोको
रोको घपने गलत इरादे
नहीं तुम्हारे गलत कदम ही
मानव का भवितव्य मिटा दे ।

तुम्हें वसम उस खू की माओ
जिसने भुक्ति सशक्त बनाई ,
अवरोधों की गहन तमिला
प्राण जलाकर सहज मिटाई ।

सम साम्यों की मजुर व्यवस्था
तुम क्यों झुठलाने को आगुर
तुम जो घरती स्वर्ग बनाने
का सकल्प लिए थे सत्वर ।

सीमाओं से कहीं अधिक तुम
इ सानों का प्यार बताते ,
वर्णों - वर्गों से विहीन ही
दुनिया का आकार जताते ।

घरती वे कुछ क्षुद्र क्षेत्र हित
क्यों माओ यह ताण्डव नतन ,
कैसा यह सीमा का झगडा
क्यों युद्धों का प्रत्यावतन ।

चीन देश की य सीमाएँ
 किस जनवादी की निधारित ,
 फिर भी इनकी चिर पावनता
 क्योंकिर तुमको इतनी ईप्सित ?

य मूने हिम मण्डन पवत
 य मूने - मून वन - प्रातर ,
 इनका मोल चुकान बोलो
 रोयें दर दर उजड़े पर घर ।

सूनी हो बहनों की मांगें
 सूनी हो माया की गोदी
 सूनी धरती के हित तुमने
 सूनपन की फमलें बो दी ।

इसलिए क्या माया तुमन
 पषपोन आवार दिया था ,
 तुम जीवन की मरघट पर दा
 बितन यह अपिबार दिया था ?

अभी समय है धम सहोन्नर
 सगीना के पथ की छाहो ,
 गाति प्रतापनी भारत भू पर
 अवन बइते सदहर मोहो ।

नही मुझे यन् ता मय मानो
 हम तुमका रोको निश्चय ,
 हम जा जीवन मज्जा बरौ
 मा सरते हैं महज प्रवर ।

धरती के मृदु दुर्दा के हिन
 भारत का यह पुन नहीं है ,

माओत्से तुग से

हिमगिरी के उग्रत मस्तर पर
बर डाला है पदाघात ,
गया - सी पावन मनिला रो
बर डाला है रक्त स्नात ।

इन शूनी बरभो को रोको
रोको अपने गलत इरादे
नही तुम्हारे गलत बरम ही
मानव का भवितव्य मिटा दे ।

तुम्ह बरम उस खू की भाओ
मिसने मुक्ति सशक्त बनाई ,
अवरोधो की गहन तमिस्रा
प्राण जलाकर सहज मिटाई ।

सम साम्या की मगुर व्यवस्था
तुम बयो भुठलाने को आगुर ,
तुम जो धरती स्वग बनाने
का सकल्प लिए थे सत्वर ।

सीमाओ से कही अधिक तुम
इ सानो का प्यार बताते ,
वर्णों - वर्गों से विहीन ही
दुनिया का आकार जताते ।

धरती के कुछ क्षुद्र क्षेत्र हिस
बयो माओ यह ताण्डव नतन ,
कैसा यह सीमा का झगडा
बयो युद्धा का प्रत्यावतन ।

अफ्रीका

संष्टि सजना के
विस्मृत पहले प्रहरो में
अनसर्पे करो से जिसे रक्षा
घोर अपूरण देख सजना
भुभलाया विघना
काट क्रोध से अलग पूव से अलग कर दिया
वह खंडित
अभिशप्त
पूरब के सहज सहोदर तुम अफ्रीका ।

सभी ओर की गहन उपेक्षा से प्रजनित
अनीभूत एकाकीपन में
तुमने ऐसे राज सजोय
जिनका भेद नहीं मिल पाता ,
जल थल के टेढ़े - मेढ़े संकेत
जिन्हें पढ़ना मुश्किल ।

कुदरत का यह छुपा हुआ जादू
तुम्हारे अतमन में
विरधता अंतर - मंतर ,
चेतन से दूर
कहीं अवचेतन में ।

तुम पढ़ने ही रहे
कुरूपता का छली वेप
व्यर्थ भयानकता पर करने ,
भय की सहज विजय करने को
तुम तो स्वयं हो गये भयानक ,
घोर अगोचर अफ्रीका

भारत का सम्मान सजाती
सीमा उसकी पुण्यमई है ।

ज्ञाति मुक्ति की पुन पताका
इस धरती पर हम फहरावेंगे ,
सुख वैभव की मा धरती पर
हम फिर फसलें सरसावेंगे ।

पथ से भ्रष्ट नहीं होते हम
जो चिर पावन भूत्य विधायक ,
नहीं शक्ति से कभी झुकगा
भारत जन मन गण अधिनायक ।

अफ्रीका

मृष्टि सजना ब
विस्मृत पहले प्रहरा म
घनसंधे बरा से जिसे रचा
घोर प्रपूरण देग सजना
भुमनाया विघना
पाट क्रोध स घनग पूव से अलग कर दिया
वह गदित
अभिधारित
पूरव के सहज सहादर तुम अफ्रीका ।

सभी धार की गहन उपेक्षा से प्रजनित
पनीभूत एवाकीपन म
तुमने ऐसे राज सजोय
जिनका भेद नहीं मिल पाता ,
जन यल के टडे - मेडे सबत
जिह पडना मुश्किल ।

मुदरत या यह छुपा हुआ जादू
तुम्हारे अतमन मे
विरचता जतर - मतर ,
चेतन से दूर
वही अवचेतन म ।

तुम पहले ही रहे
गुरूपता का छनी वेध
व्यग्न भयानकता पर करने ,
भय की सहज विजय करने को
तुम तो स्वयं हो गये भयानक ,
घोर अगोचर अफ्रीका

इसीलिए तो सदा प्रताड़ित
 अन पहचानी रही तुम्हारी मानवता ,
 पद दलित तुम्हें किया बधिवा न
 जो अधिक तुम्हारे हिंस्र भेटिया से भी हिसन ,
 जिनका गव अधिक अघा है
 तुमको घेरे अधकार से ।

सम्या की दानवी पिपासा
 ने नमन नृत्य कर
 तुम्हें पी लिया ,
 तुम रोये तो कठ रत्न कर दिया
 और बना की सघन - पत्तिया
 अश्रु रक्त से स्नात हो गई ,
 लुटेरा क बूटो की कीला ने
 छाड़े अमिट चिह्न
 तुम्हारी अमिशापित
 इतिहासा की राहों पर ।

उधर उदधि के पार
 नगर नगर में ग्राम ग्राम में
 गुञ्जित गिर्जों के घटा व मधु स्वर ,
 मा की ममतामयी बाह में
 सुनने लोरी के गीत सुहाने
 स्वप्निल शिशु
 कवि मनीषी गीत गा रहे सुन्दरता के ।

आज हूवते सूरज की घुटती किरणों से आच्छादित
 पश्चिमी क्षितिज ,
 घुटता दम
 अधकार का दत्य
 मरणासन्न दिवस का मृत्यु गीत गा रहा ।

धामो तुम
 ओ नाग्य - विघायक घडिया के कवि
 इस पद - दलित
 अबला अफीकी भूमि से
 दामा भाग लो
 होने दो य दारद दामा के
 अन्तिम स्वर ,
 रोग प्रस्त महा डीप व
 स्वप्नाविष्ट भीरवार म ।

रवी ननाथ ठाकुर की इसी शीर्षक की
 कविता के अमरेजी सरकारण का अनुवाद

मुराद

मेरे दिल की यह छोटी सी मुराद है
कि आदम की दुनिया को आदमी चाहिए ,
घाला दिमाग लासानी ज़िगर सच्चा ईमान
और जिसकी घेताव मुठ्ठिया में वशिश भरी हो ।

ऐसा इंसान जिसे आहूद का रश्क मुर्दा न बना दे
ऐसा इंसान जिसे हुनूमन का सितम झुका न सक ,
ऐसा इंसान जिसके अपने खयाल अपनी आकात हो
जिसके दिल में दिलेरी थीं मन में लगन हो
जिसका अदब हो ज़िम्मी आबर हो
जिसकी जुबान का एतवार हो ।

ऐसा इंसान जो गुमराह करने वाले रहनुमा से लोहा ले सके
रहनुमा के अहमक चापलूमा को ठुकरा सके
अधी रँयत के सडे बिश्वासा को बीच रहकर भी
जो बीचड और कोहरे से ऊपर हो
आफताब की तरह तेज और चमकता हुआ
तुलद और बेदाग ।

आज आदम की दुनिया में आदमी नहीं है
ऊँचे ऊँचे ओहदे और करतब छोटे ,
नाम रोशन और करतूतें काली
परले दर्जे की खुदगर्जी और सेवा का बहाना ।

दीलत की रोशनी में दिल बुझ गया है
सिक्कों की खन खन में घड़कन खो गई है ,
आजादा के जश्ना में आजाद रो रहे हैं
जुल्मी की हुकूमत है इमाफ तो रहा है

